बाल विकास एवं शिक्षण विधियाँ नवीन पाठ्यक्रम

I. बाल विकास और अध्यापन

(क) बाल विकास (प्राथमिक विद्यालय का बालक)

- विकास की अवधारणा तथा अधिगम के साथ उसका संबंध
- बालकों के विकास के सिद्धान्त
- आनुवांशिकता और पर्यावरण का प्रभाव
- सामाजीकरण प्रक्रियाएं : सामाजिक विश्व और बालक (शिक्षक, अभिभावक और मित्रगण)
- पाइगेट, कोलबर्ग और वायगोट्स्की : निर्माण और विवेचित संदर्श
- बाल-केन्द्रित और प्रगामी शिक्षा की अवधारणाएँ
- बौद्धिकता के निर्माण का विवेचित संदर्श
- बहु-आयामी बौद्धिकता
- भाषा और चिंतन
- समाज निर्माण के रूप में लिंग, लिंग भूमिकाएं, लिंग-पूर्वाग्रह और शैक्षणिक व्यवहार
- शिक्षार्थियों के मध्य वैयक्तिक विभेद, भाषा, जाति, लिंग, समुदाय, धर्म आदि की विविधता पर आधारित विभेदों को समझाना
- अधिगम के लिए मूल्यांकन और अधिगम का मूल्यांकन के बीच अंतर, विद्यालय आधारित मूल्यांकन, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन : संदर्श और व्यवहार
- शिक्षार्थियों की तैयारी के स्तर के मूल्यांकन के लिए (कक्षा में शिक्षण और विवेचित चिंतन के लिए तथा शिक्षार्थी की उपलब्धि के लिए उपयुक्त प्रश्न तैयार करना।

(ख) समावेशी शिक्षा की अवधारणा तथा विशेष आवश्यकता वाले बालकों को समझना।

- गैर-लाभप्राप्त और अवसर-वंचित शिक्षार्थियों सहित विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए शिक्षणार्थियों की आवश्यकताओं को समझना।
- अधिगम संबंधी समस्याएं, कठिनाई वाले बालकों की आवश्यकताओं को समझना।
- मेधावी, सृजनशील, विशिष्ट प्रतिभावान शिक्षणार्थियों की आवश्यकताओं को समझना।

(ग) अधिगम और अध्यापन

- बालक किस प्रकार सोचते हैं और सीखते हैं, बालक विद्यालय प्रदर्शन में सफलता प्राप्त करने में कैसे और क्यों 'असफल' होते हैं।
- अधिगम और अध्यापन की बुनियादी प्रक्रियाएँ; बालकों की अधिगम कार्यनीतियाँ : सामाजिक क्रियाकलाप के रूप में अधिगम; अधिगम के सामाजिक संदर्भ।
- एक समस्या समाधानकर्ता और एक 'वैज्ञानिक अन्वेषक' के रूप में बालक।
- बालकों में अधिगम की वैकल्पिक संकल्पना, अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण चरणों के रूप में बालक की 'त्रुटियों' को समझना।
- बोध और संवेदनाएं
- प्रेरणा और अधिगम
- अधिगम में योगदान देने वाले कारक–निजी एवं पर्यावरणीय।

खण्ड-(क)

बाल-विकास

1.

बाल विकास का अर्थ, आवश्यकता, क्षेत्र तथा सिद्धान्त, बाल विकास की अवस्थाएँ (शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था) एवं उनके अन्तर्गत होने वाले विकास

बाल-विकास

मानव विकास का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है, उस शाखा को बाल-मनोविज्ञान या 'बाल-विकास' कहा जाता है।

बाल विकास का अर्थ एवं परिभाषा

बाल विकास के अन्तर्गत बालकों के व्यवहार, स्थितियाँ, समस्याओं तथा उन सभी कारणों का अध्ययन किया जाता है, जिनका प्रभाव बालक के व्यवहार पर पड़ता है।

बाल विकास या बाल मनोविज्ञान की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

- **जेम्स ड्रेवर के अनुसार–**''बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें जन्म से परिपक्वावस्था तक विकसित हो रहे मानव का अध्ययन किया जाता है।''
- **क्रो एवं क्रो के अनुसार–**''बाल मनोविज्ञान वह मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।''
- **आइजेंक के अनुसार–**''बाल मनोविज्ञान का सम्बन्ध बालक में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के विकास से है। गर्भकालीन अवस्था, जन्म, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और परिपक्वावस्था तक के बालक की मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।''
- **थाम्पसन के अनुसार–**''बाल मनोविज्ञान सभी को एक नयी दिशा में संकेत करता है। यदि उसे उचित रूप में समझा जा सके तथा उसका उचित समय पर उचित ढंग से विकास हो सके तो प्रत्येक बालक एक सफल व्यक्ति बन सकता है।''
- **हरलॉक के अनुसार–**''आज बाल विकास में मुख्यतः बालक के रूप, व्यवहार, रुचियों और लक्ष्णों में होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है, जो उसके एक विकासात्मक अवस्थाओं से दूसरी विकासात्मक अवस्थाओं में पदार्पण करते समय होते हैं। बाल-विकास में यह खोज करने का भी प्रयास किया जाता है कि यह परिवर्तन कब होते हैं, इसके क्या कारण हैं और यह वैयक्तिक हैं या सार्वभौमिक।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि बाल विकास मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें विकास की विभिन्न अवस्थाओं में मानव के व्यवहार में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

बाल विकास की आवश्यकता

- बाल-विकास के अध्ययन के द्वारा बालक के जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाया जा सकता है।
- बाल-विकास के अध्ययन के द्वारा बालकों से सम्बन्धित समस्याओं को समझकर उनका समाधान किया जा सकता है।
- बाल मनोविज्ञान के द्वारा अध्यापक और अभिभावक बच्चे में अधिगम की क्षमता का सही विकास कर सकते हैं।
- बच्चों की समुचित क्षमता का विकास कब और कैसे करना है, बाल मनोविज्ञान की सहायता से ही सम्भव हो सकता है।
- बाल मनोविज्ञान बच्चों के समुचित निर्देशन के लिए व्यवहारिक उपाय बताता है ताकि उनकी क्षमताओं और अभिवृत्तियों को उचित रूप से निर्देशित किया जा सके।

अंत में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में बाल-मनोविज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। बाल मनोविज्ञान के बिना मनोविज्ञान विषय अधूरा है।

बाल विकास के क्षेत्र

बाल विकास के क्षेत्र में गर्भधारण अवस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार सम्बन्धी समस्याएँ सम्मिलित हैं। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में कौन-कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से कब और क्यों होते हैं, आदि।

बाल विकास के निम्नलिखित क्षेत्र हो सकते हैं–

1. **बालक और वातावरण–**इस क्षेत्र के अन्तर्गत बालक का वातावरण पर तथा वातावरण का बालक के व्यवहार, व्यक्तित्व तथा शारीरिक विकास आदि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।
2. **बालकों के वैयक्तिक विभिन्नताओं का अध्ययन–**इसके अन्तर्गत बालक के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सांवेगिक सामाजिक, भाषायी आदि विभिन्नताओं तथा इससे सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
3. **बाल व्यवहार और अंतःक्रियाएँ–**इसके अन्तर्गत विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक के विभिन्न अंतःक्रियाओं और व्यवहारों को समझकर यह जानने का प्रयास किया जाता है कि बालक के पर्यावरणीय समायोजन में कौन-सी अंतःक्रियाएँ बाधक हैं और कौन सहयोगी हैं।
4. **मानसिक प्रक्रिया–**इस क्षेत्र के अन्तर्गत बालक के विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं की विभिन्न अवस्थाओं में गति, स्वरूप तथा विकास आदि का अध्ययन किया जाता है।
5. **बालक-बालिकाओं का मापन–**इसके अन्तर्गत बच्चों के विभिन्न मानसिक और शारीरिक मापन तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
6. **समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ–**इस क्षेत्र के अन्तर्गत बालक के विभिन्न प्रकार की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
7. **अभिभावक बालक सम्बन्ध–**इस क्षेत्र के अन्तर्गत अभिभावक बालक सम्बन्ध का विकास, अभिभावक-बालक सम्बन्धों के निर्धारक, पारिवारिक सम्बन्धों में ह्रास आदि समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
8. **विशिष्ट बालकों का अध्ययन–**इस क्षेत्र के अन्तर्गत पिछड़े बालक, समस्यात्मक बालक, मंद बुद्धि बालक, प्रतिभाशाली बालक आदि विभिन्न योग्यता व क्षमता वाले बालकों की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

विकास के सिद्धान्त

गैरिसन एवं अन्य के अनुसार– जब बालक, विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है, तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं। अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि ये परिवर्तन निश्चित सिद्धांतों के अनुसार होते हैं। इन्हीं को विकास का सिद्धांत कहा जाता है। इन विकास के सिद्धांतों की संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित है–

1. निरंतरता का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रक्रिया निरन्तर व अविराम गति से चलती रहती है, जो कभी मंद व कभी तीव्र हो सकती है।

2. व्यक्तिगतता का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के विकास की गति एवं दिशा भिन्न–भिन्न होती है। दूसरे शब्दों में एक ही आयु के दो बालकों या बालिकाओं में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा चारित्रिक आदि विभिन्नताओं का होना विकास की व्यक्तिगतता को इंगित करता है।

3. परिमार्जितता का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार विकास की गति तथा दिशा में परिमार्जन सम्भव होता है। दूसरे शब्दों में सही ढंग से किये गये प्रयासों के द्वारा विकास की गति को वांछित दिशा की ओर तथा उसे तीव्र गति से उन्मुख किया जा सकता है।

4. विकास–क्रम का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक प्रजाति, चाहे वह पशु हो या मानव, के विकास का एक निश्चित प्रतिक्रम होता हे जो उस प्रजाति के समस्त सदस्यों के लिए सामान्य होता है तथा उस प्रजाति के समस्त सदस्य उस प्रतिक्रम का अनुसरण करते हैं। इसे **निश्चित–पूर्व कथनीय सिद्धांत** के नाम से भी जाना जाता है।

5. मस्तकाधोमुखी विकास का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार बालक का विकास सिर से पैर की दिशा में होता है। अर्थात पहले मस्तिष्क फिर धड़ और अंत में पैर में विकास होता है।

6. एकीकरण का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार बालक पहले सम्पूर्ण अंग को और फिर अंग के भागों को चलाना सीखता है। उसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है।

7. समान प्रतिमान का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक प्रजाति चाहे वह पशु हो या मानव अपनी प्रजाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करता है।

8. सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार बालक का विकास सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं की ओर होता है। वह पहले अपने किसी एक अंग का संचालन करने से पूर्व अपने पूरे शरीर का संचालन करता है और किसी विशेष वस्तु की ओर इशारा करने से पूर्व अपने हाथों को सामान्य रूप से चलाता है।

9. वंशानुक्रम तथा वातावरण की अंतःक्रिया का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार बालक का विकास वंशानुक्रम तथा वातावरण की परस्पर अंतर्क्रिया का परिणाम होता है।

10. चक्राकार प्रगति का सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार विकास रेखीय गति एवं स्थिर दर से न होकर चक्राकार ढंग से होता है। अर्थात विकास प्रक्रिया के दौरान बीच–बीच में ऐसे अवसर आते हैं जबकि किसी क्षेत्र विशेष में विकास की पूर्व अर्जित स्थिति का समायोजन करने के लिए उस क्षेत्र की विकास प्रक्रिया लगभग विराम की स्थिति में आ जाती है।

बाल विकास की अवस्थाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने अपनी सुविधानुसार विकास को विभिन्न अवस्थाओं में बाँटकर उनमें होने वाले परिवर्तनों और विशेषताओं को पहचानकर यह स्पष्ट कर दिया कि, बालक का विकास एक अवस्था से दूसरी अवस्था में अचानक नहीं होता, बल्कि विकास की गति स्वभाविक रूप से क्रमशः होती रहती है। विभिन्न विद्वानों ने बालकों के विकास को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है–

कोल के अनुसार विकास की अवस्थाएँ–

	अवस्थाएँ	बालक	बालिकाएँ
1.	शैशवावस्था	जन्म से 2 वर्ष तक	–
2.	प्रारम्भिक बाल्यावस्था	2 वर्ष से 5 वर्ष तक	–
3.	मध्य बाल्यावस्था	6 वर्ष से 12 वर्ष	6 वर्ष से 10 वर्ष
4.	पूर्व किशोरावस्था या उत्तर बाल्यावस्था	13 वर्ष से 14 वर्ष	11 वर्ष से 12 वर्ष
5.	प्रारम्भिक किशोरावस्था	15 वर्ष से 16 वर्ष	12 वर्ष से 14 वर्ष
6.	मध्य किशोरावस्था	17 वर्ष से 18 वर्ष	15 से 17 वर्ष
7.	उत्तर-किशोरावस्था	19 वर्ष से 20 वर्ष	18 से 20 वर्ष
8.	प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था	21 वर्ष से 34 वर्ष	–
9.	मध्य प्रौढ़ावस्था	35 वर्ष से 49 वर्ष	–
10.	उत्तर प्रौढ़ावस्था	50 वर्ष से 64 वर्ष	–
11.	प्रारम्भिक वृद्धावस्था	65 वर्ष से 75 वर्ष	–
12.	वृद्धावस्था	75 वर्ष से आगे	–

हरलॉक के अनुसार विकास की अवस्थाएँ-

1.	गर्भकालीन अवस्था	–	गर्भाधान से जन्म तक
2.	शैशवावस्था	–	जन्म से दो सप्ताह या चौदह दिन तक
3.	बचपनावस्था	–	दो सप्ताह के बाद से दो वर्ष तक
4.	पूर्व बाल्यावस्था	–	तीसरे वर्ष से छः वर्ष तक
5.	उत्तर बाल्यावस्था	–	सातवें वर्ष से बारह वर्ष तक
6.	वयः संधि	–	बारह वर्ष से चौदह वर्ष तक
7.	पूर्व किशोरावस्था	–	तेरह वर्ष से सत्तरह वर्ष तक
8.	उत्तर किशोरावस्था	–	अठारह वर्ष से इक्कीस वर्ष तक
9.	प्रौढ़ावस्था	–	इक्कीस वर्ष से चालीस वर्ष तक
10.	मध्यावस्था	–	इकतालीस वर्ष से साठ वर्ष तक
11.	वृद्धावस्था	–	साठ वर्ष से ऊपर

सामान्य रूप से मानव विकास को पाँच अवस्थाओं में बाँटा जाता है–

1.	गर्भावस्था	–	गर्भाधान से जन्म तक
2.	शैशवावस्था	–	जन्म से 5 वर्ष तक
3.	बाल्यावस्था	–	6 से 12 वर्ष तक
4.	किशोरावस्था	–	13 वर्ष से 18 वर्ष तक
5.	प्रौढ़ावस्था	–	19 वर्ष से अधिक

1. गर्भावस्था की विशेषताएँ-

इस अवस्था की सामान्य अवधि 9 महीने 10 दिन की होती है। इस अवस्था में विकास की गति तीव्र होती है तथा इस अवस्था में अधिकांश विकास शिशु के शरीर में होते हैं। इस अवस्था की तीन उप-अवस्थाएँ हैं–(1) डिम्बावस्था, (2) पिण्डावस्था, (3) भ्रूणावस्था।

2. शैशवावस्था-

शैशवावस्था बालक का निर्माण काल कहा जाता है। यह अवस्था जन्म से पाँच वर्ष तक मानी जाती है। जन्म से 3 वर्ष तक पूर्व शैशवावस्था और 3 से 5 वर्ष की आयु **उत्तर शैशवावस्था या पूर्व बाल्यावस्था** कहलाती है।

- **न्यूमैन के अनुसार–**"पाँच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बड़ी ग्रहणशील होती है।"
- **फ्रायड के शब्दों में–**"मनुष्य को जो कुछ भी बनना होता है, वह चार-पाँच वर्षों में बन जाता है।"
- **क्रो एवं क्रो ने बीसवीं शताब्दी को बालक की शताब्दी कहा है।**

शैशवावस्था की मुख्य विशेषताएँ–

1. शारीरिक विकास में तीव्रता
2. मानसिक क्षमताओं में तीव्रता
3. सीखने में तीव्रता
4. दोहराने की प्रवृत्ति
5. जिज्ञासा प्रवृत्ति
6. दूसरों पर निर्भरता
7. आत्म प्रेम की भावना
8. नैतिकता का अभाव
9. मूल प्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार
10. सामाजिक भावना का विकास
11. दूसरे बालकों में रुचि या अरुचि
12. संवेगों का प्रदर्शन
13. अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति
14. कल्पना की सजीवता
15. काम प्रवृत्ति की भावना

शैशवावस्था में शिक्षा-

1. उचित वातावरण की उपलब्धता
2. स्वस्थ्य पालन-पोषण की व्यवस्था
3. स्नेहपूर्ण व्यवहार
4. जिज्ञासा की संतुष्टि
5. सामाजिक भावना का विकास
6. मानसिक क्रियाओं के लिए उचित अवसर
7. वार्तालाप के अवसर
8. आत्म प्रदर्शन के अवसर
9. अच्छी आदतों का निर्माण
10. वैयक्तिक विभेदों पर ध्यान
11. क्रिया द्वारा सीखने की आदत का निर्माण
12. चित्रों व कहानियों द्वारा शिक्षा
13. खेल द्वारा शिक्षा
14. मूल प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन

3. बाल्यावस्था-

इस अवस्था को व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में बालकों में विभिन्न आदतों, व्यवहार, रुचि, इच्छाओं आदि के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। इस अवस्था को शिक्षाशास्त्री **'प्रारम्भिक विद्यालय की आयु'** तथा कुछ अन्य विद्वान इसे **'स्फूर्ति अवस्था'** और **'गंदी अवस्था'** भी कहते हैं।

- **कोल व ब्रुस के अनुसार–**"वास्तव में माता-पिता के लिए बाल विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है।"
- **रॉस** ने बाल्यावस्था को **'मिथ्या-परिपक्वता'** का काल बताते हुए कहा है–"शारीरिक और मानसिक स्थिरता बाल्यावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।'

बाल्यावस्था की मुख्य विशेषताएँ-

1. शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता
2. मानसिक योग्यताओं में वृद्धि
3. जिज्ञासा की प्रबलता
4. रचनात्मक कार्यों में रुचि
5. वास्तविक जगत से सम्बन्ध
6. आत्मनिर्भरता की भावना
7. सामाजिक तथा नैतिक गुणों का विकास
8. ***सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता**
9. बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास
10. रुचियों में परिवर्तन
11. काम प्रवृत्ति की न्यूनता
12. संग्रह करने की प्रवृत्ति
13. निरुद्देश्य भ्रमण की प्रवृत्ति

बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप-

1. शारीरिक विकास पर बल
2. बाल मनोविज्ञान पर आधारित शिक्षा
3. भाषा के ज्ञान पर बल
4. खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षा
5. उपयुक्त विषयों का चुनाव
6. रोचक पाठ्यक्रम
7. जिज्ञासा प्रवृत्ति की संतुष्टि
8. नैतिक शिक्षा
9. सामाजिक गुणों का विकास
10. संचय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन
11. सामूहिक प्रवृत्ति की तुष्टि
12. मानसिक विकास पर बल
13. पर्यटन व स्काउटिंग की व्यवस्था
14. संवेगों के प्रदर्शन का अवसर
15. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था

4. किशोरावस्था -

किशोरावस्था को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का **संधि काल** कहा जाता है। किशोरावस्था को अंग्रेजी में **'एडोलेसेन्स' (Adolescence)** कहते हैं। एडोलेसेन्स शब्द लैटिन शब्द **एडोलसियर (Adolescere)** से बना है, जिसका अर्थ **'परिपक्वता की ओर बढ़ना'** होता है।

- **क्रो एवं क्रो के अनुसार–**"किशोर ही वर्तमान की शक्ति और भावी आशा को प्रस्तुत करता है।"
- **जरशील्ड के अनुसार–**"किशोरावस्था वह समय है जिसमें विचारशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर संक्रमण करता है।"
- **स्टेनले हॉल के अनुसार–**"किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है।"
- **इ. ए. किर्कपैट्रिक के अनुसार–**"इस बात पर कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल है।"
- **विग व हण्ट के अनुसार–**"किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है–परिवर्तन।"

■ **किशोरावस्था में विकास के सिद्धान्त–**किशोरावस्था के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रचलित हैं–

1. **आकस्मिक विकास का सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त के समर्थक **स्टेनले हॉल** हैं। इन्होंने वर्ष 1904 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'एडोलेसेन्स'** में लिखा है कि– "किशोर में जो शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं, वे अकस्मात् होते हैं।"
2. **क्रमिक विकास का सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त के समर्थकों में **किंग, थॉर्नडाइक** और **हालिंगवर्थ** प्रमुख हैं। इनका मानना है कि किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन निरन्तर और क्रमशः होते हैं।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएँ-

1. शारीरिक विकास में तीव्रता एवं दृढ़ता
2. मानसिक योग्यताओं का विस्तार
3. स्थिरता व समायोजन का अभाव
4. घनिष्ठ व व्यक्तिगत मित्रता
5. व्यवहार में विभिन्नताएँ
6. स्वतंत्रता व विद्रोह की भावना
7. काम-शक्ति की परिपक्वता
8. रुचियों में परिवर्तन तथा स्थायित्व
9. समूह को महत्व
10. ईश्वर तथा धर्म में विश्वास
11. वीर पूजा की भावना
12. स्वाभिमान की भावना
13. अपराध प्रवृत्ति का विकास
14. समाज सेवा की भावना
15. स्थिति व महत्व की अभिलाषा
16. व्यवसाय की चिंता
17. जीवन दर्शन का निर्माण

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप-

1. शारीरिक विकास के लिए शिक्षा
2. मानसिक विकास के लिए शिक्षा
3. संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा
4. वैयक्तिक विभिन्नता के अनुसार शिक्षा
5. सामाजिक सम्बन्धों की शिक्षा
6. यौन शिक्षा
7. किशोर के साथ वयस्क जैसा व्यवहार
8. धार्मिक व नैतिक शिक्षा
9. उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग
10. बालक व बालिकाओं के पाठ्यक्रम में विभिन्नता
11. किशोरों को व्यक्तिगत व व्यवसायगत निर्देशन और परामर्श

विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास

बालक के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायुमण्डल, मांसपेशीय वृद्धि, गामक तंत्र, अंतःस्रावी ग्रंथियाँ आदि प्रमुख रूप से आती हैं। शारीरिक विकास का प्रभाव बालक के व्यवहार तथा विकास के अन्य पक्षों जैसे–सामाजिक, मानसिक, सांवेगिक आदि पर भी पड़ता है इसलिए शैक्षिक दृष्टि से इसको महत्वपूर्ण माना जाता है।

गर्भावस्था में या जन्म-पूर्व शारीरिक विकास-

सामान्यतः जन्म-पूर्व की अवधि 40 सप्ताह या 280 दिन का होता है। निषेचन से जन्म तक के समय को जन्म पूर्व काल या गर्भावस्था का काल कहा जाता है। जन्म-पूर्व काल को तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है–(1) डिम्बावस्था या बीजावस्था, (2) पिण्डावस्था तथा (3) भ्रूणावस्था।

1. **डिम्बावस्था**–यह अवस्था निषेचन के उपरान्त प्रथम दो सप्ताह तक चलती है।
2. **पिण्डावस्था**–यह अवस्था निषेचन के तीसरे सप्ताह से शुरू होकर आठवें सप्ताह तक चलती रहती है। इस अवस्था में कोषों का समूह एक लघु मानव के रूप में परिवतर्तित हो जाता है।
3. **भ्रूणावस्था**–निषेचन के नवें सप्ताह से लेकर बालक के जन्म तक का कालखण्ड भ्रूणावस्था अथवा भ्रूणकाल कहलाती है।

शैशवावस्था में शारीरिक विकास-

शैशवावस्था में विशेषकर जन्म से लेकर तीन वर्ष की आयु होने के दौरान शारीरिक विकास की गति अत्यन्त तीव्र रहती है। वस्तुतः शैशवावस्था के विकास में दो सोपान हो जाते हैं–

- जन्म से तीन वर्ष,
- 3 वर्ष से 5 वर्ष

भार-

जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। जन्म के समय बालक का भार लगभग 7.15 पौंड या 3.2 किग्रा. और बालिका का भार 7.13 पौंड या 3.0 किग्रा. होता है। पहले 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुना हो जाता है।

लम्बाई-

जन्म के समय शिशु की औसत लम्बाई 50–51 सेमी. होती है। प्रथम वर्ष के अन्त में 67–73 सेमी., दूसरे वर्ष के अन्त में 77–82 सेमी. तथा 6 वर्ष तक 100–110 सेमी. तक हो जाती है।

सिर व मस्तिष्क-

नवजात शिशु की सिर की लम्बाई उसके शरीर के कुल लम्बाई की एक चौथाई होती है। प्रथम दो वर्षों में सिर की लम्बाई तथा आकार में तीव्र गति से वृद्धि होती है। जन्म के समय मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है जो 6 वर्ष की आयु तक 1 किलो 250 ग्राम हो जाता है।

हड्डियाँ-

नवजात शिशु में हड्डियों की संख्या लगभग 270 होती हैं। सम्पूर्ण शैशवावस्था में ये छोटी, कोमल तथा लचीली होती हैं। हड्डियाँ **कैल्शियम, फास्फोरस** और **अन्य खनिज लवणों** की सहायता से मजबूत होती हैं। मजबूत होने की इस प्रक्रिया को **अस्थिकरण** अथवा **अस्थि दृढ़ीकरण** कहते हैं।

मांसपेशियाँ-

शिशु की मांसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भाग का 23% होता है। 6 वर्ष की आयु तक मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का लगभग एक चौथाई अर्थात् 25% हो जाता है। शिशु की भुजाओं का विकास तीव्र गति से होता है।

दाँत-

लगभग छठें या सातवें माह में अस्थायी दूध के दाँत निकलने लगते हैं। चार वर्ष तक लगभग सभी दाँत निकल आते हैं। पाँचवें या छठे वर्ष की आयु से शिशु के स्थायी दाँत निकलने लगते हैं।

अन्य अंग-

नवजात शिशु का सिर शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय हृदय की धड़कन कभी तेज व कभी धीमी होती है जैसे-जैसे हृदय बड़ा होता है धड़कन में स्थिरता आती जाती है। शिशु के आंतरिक अंगों–पाचन तंत्र, फेफड़ा, स्नायुमण्डल, रक्त संचार अंग, जनन अंग, ग्रंथियों आदि का विकास भी तीव्र गति से होता है।

गामिक नियंत्रण-

जन्म के कुछ समय उपरान्त से ही शिशु अपने स्नायुओं पर नियंत्रण करने का प्रयास प्रारम्भ कर देता है। वह पहले सिर फिर धड़ और अंत में टाँगों पर नियंत्रण करना सीखता है। शिशु एक सप्ताह में मुस्कुराने लगता है, एक माह में सिर ऊपर उठाने लगता है, 4 माह में सहारे के साथ बैठ जाता है, 7 महीने में बिना सहारे के बैठ जाता है, 10 महीने में घुटने के बल चलने लगता है, 14 महीने में खड़ा हो जाता है तथा 15 महीने में चलने लगता है।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास-

बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों के दौरान अर्थात् 6 से 9 वर्ष की आयु तक शारीरिक विकास अधिक तीव्र गति से होता है। बाद के तीन वर्षों में शारीरिक विकास की गति धीमी हो जाती है परन्तु इस अवधि में शारीरिक विकास दृढ़ता की ओर उन्मुख होता है। इसलिए 9 से 12 वर्ष की आयु को **परिपाक काल** भी कहा जाता है।

भार-

इस अवस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। 9 या 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना प्रारम्भ हो जाता है।

लम्बाई-

बाल्यावस्था में शरीर की लम्बाई कम बढ़ती है। इन सब वर्षों में लम्बाई 2 या 3 इंच ही बढ़ती है।

हड्डियाँ-

इस अवस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता या अस्थिकरण दोनों में वृद्धि होती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर लगभग 350 हो जाती है।

दाँत-

बाल्यावस्था के आरम्भ में दूध के दाँत गिरने लगते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दाँत निकलने लगते हैं। 16 वर्ष तक लगभग सभी 27-28 दाँत निकल आते हैं।

मांसपेशियाँ-

मॉसपेशियों का भार 8 वर्ष तक कुल भार का 27% तथा 12 वर्ष तक 33% हो जाता है। बालिकाओं की मांसपेशियाँ बालकों की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं।

सिर व मस्तिष्क-

बाल्यावस्था के अन्त तक सिर का आकार तथा भार लगभग 95% तक विकसित हो जाता है। बाल्यावस्था के अंत तक मस्तिष्क का आकार तथा भार भी प्रौढ़ मस्तिष्क के आकार तथा भार का लगभग 95% तक विकसित हो जाता है।

अन्य अंग-

बाल्यावस्था में बालक अपने सभी अंगों पर नियंत्रण करने में समर्थ्य हो जाता है। बारह वर्ष की आयु तक थड़कन की गति लगभग 85 प्रति मिनट हो जाती है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास-

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं का विकास तीव्र गति से होता है। बालकों में तीव्रतम वृद्धि का समय 14 वर्ष की आयु तक तथा बालिकाओं में 11 से 18 वर्ष की आयु तक होता है।

आकार एवं भार-

इस अवस्था में लम्बाई तेजी से बढ़ती है। बालक 18 वर्ष की आयु तक तथा बालिकाएँ 16 वर्ष की आयु तक अपनी अधिकतम ऊँचाई प्राप्त कर लेती हैं। इस अवस्था में बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है।

सिर व मस्तिष्क-

इस अवस्था में सिर व मस्तिष्क का विकास मंद गति से होता है। लगभग 16 वर्ष की आयु तक सिर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1200 से 1400 ग्राम के बीच होता है।

हड्डियाँ-

किशोरावस्था में हड्डियों के अस्थिकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या कम होने लगती है।

मांसपेशियाँ-

किशोरावस्था की समाप्ति पर मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का लगभग 45% तक हो जाता है।

अन्य अंग-

इस अवस्था के अन्त तक सभी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं। किशोरावस्था के अन्त तक हृदय की गति 72 प्रति मिनट तक हो जाता है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. वंशानुक्रम	7. खेल तथा व्यायाम
2. वातावरण	8. प्रेम तथा सहानुभूति
3. पौष्टिक भोजन	9. रोगों के कारण शरीर में उत्पन्न विकृतियाँ
4. नियमित दिनचर्या	10. दुर्घटना
5. निद्रा व विश्राम	11. भौगोलिक परिस्थितियाँ
6. परिवार की स्थिति	12. गर्भावस्था की असावधानियाँ

गत्यात्मक विकास

गत्यात्मक विकास से तात्पर्य पेशीय संचालन के विकास से है। बालक इसमें अपने मांसपेशियों पर नियंत्रण करना सीखता है।

गत्यात्मक विकास दो रूपों में होता है–

1. स्थूल गत्यात्मक विकास
2. सूक्ष्म गत्यात्मक विकास

शैशवावस्था में स्थूल गत्यात्मक विकास–स्थूल गत्यात्मक विकास से तात्पर्य बड़ी पेशियों पर नियंत्रण से है। ये पेशियाँ घुटनों के बल चलने, खड़े होने, चलने, ऊपर चढ़ने तथा दौड़ने जैसी क्रियाओं में सहायक होती है।

शैशवावस्था में सूक्ष्म गत्यात्मक विकास–सूक्ष्म गत्यात्मक विकास से तात्पर्य छोटी पेशियों पर नियंत्रण से है। कप या अन्य वस्तुओं को पकड़ना, पुस्तक के पृष्ठों को पलटना, बटन तथा जिप लगाना, ड्राइंग करना, लिखना आदि में छोटी पेशियों का प्रयोग होता है।

आरम्भिक बाल्यावस्था में स्थूल गत्यात्मक विकास–इस अवस्था में अधिकतर मौलिक गत्यात्मक कौशलों जैसे–दौड़ना, पकड़ना आदि शैशव अवस्था की तुलना में अधिक सटीकता के साथ किया जाता है। पाँच वर्ष की आयु के पश्चात् पेशीय समन्वय में मुख्य रूप से विकास होता है। इस अवस्था में इन गत्यात्मक गतिविधियों को देखा जा सकता है–दौड़ना, उछलना, रस्सी कूदना तथा छल्ला घुमाना, तिपहिया साइकिल चलाना, गेंद फेंकना तथा पकड़ना आदि।

आरम्भिक बाल्यावस्था में सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों का विकास–आरम्भिक बाल्यावस्था के वर्षों में फाड़ने, काटने, चिपकाने, क्ले या आटे के गोले से खेलने, ड्राइंग, मनकों को पिरोने जैसी गतिविधियों से आँखों तथा हाथों के समन्वय तथा मोटर कौशलों को विकसित करने में काफी मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त स्वयं–भोजन करना, कपड़े पहनना, तैयार होना, लिखना, नकल करना आदि इस अवस्था में सूक्ष्म गतिक कौशल के विकास है।

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक विकास

मानसिक विकास से तात्पर्य मानसिक शक्तियों में वृद्धि होने से है। इसके अन्तर्गत अवबोधन, स्मरण, ध्यान, संवेदनशीलता, प्रत्यय-निर्माण, अवलोकन, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, चिंतन, तर्क, निर्णय, बुद्धि, अधिगम क्षमता आदि संज्ञानात्मक शक्तियाँ आती हैं। मानसिक विकास परिपक्वता, अनुभव तथा अधिगम के फलस्वरूप होता है।

शैशवावस्था में मानसिक विकास-

- जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क पूर्णतया अविकसित होता है और वह अपने वातावरण को नहीं जानता है। शैशवावस्था में शिशुओं की मानसिक योग्यताओं का विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार तीन वर्ष की आयु तक शिशु का लगभग पचास प्रतिशत मानसिक विकास हो जाता है।
- जन्म से तीन माह तक शिशु केवल अपने हाँथ पैर हिलाता है। भूख लगने पर रोना, हिचकी लेना, दूध पीना, कष्ट का अनुभव करना, चौकना, चमकदार चीज़ को देखकर आकर्षित होना या कभी-कभी हँसना आदि क्रियाएँ करता है।
- चौथे से छः माह तक शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियाँ करता है। वस्तुओं को पकड़ने का प्रयास करता है। सुनी हुई आवाज़ का अनुकरण करता है व अपना नाम समझने लगता है।
- सातवें माह से नौवें माह तक वह घूटने के बल चलने और सहारे से खड़ा होने लगता है।
- दसवें माह से 1 वर्ष तक वह बोलने का अनुकरण करता है।
- दूसरे वर्ष से शब्द व वाक्य बोलने लगता है।
- तीसरे वर्ष में पूछे जाने पर अपना नाम बताने लगता है। छोटी-छोटी कविता या कहानी भी सुनाता है। अपने शरीर के अंग पहचानने लगता है।
- चौथे वर्ष तक वह 4–5 तक गिनती लिखना व अक्षर लिखना जानने लगता है।
- पाँचवें वर्ष में शिशु हल्की और भारी वस्तु में अन्तर करने लगता है व विभिन्न रंग पहचानने लगता है। वह अपना नाम लिखने लगता है।

इस प्रकार शैशवावस्था में मानसिक विकास शीघ्रता से होता है। इस अवस्था में बच्चे कल्पना जगत में रहते हैं। वे अधिकतर अनुभव निरीक्षण व अनुभव द्वारा सीखते हैं।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास-

- इस अवस्था में बालक के समझने, स्मरण करने, विचार करने, समस्या समाधान करने, तर्क, चिंतन व निर्णय लेने आदि की क्षमता का विकास समुचित मात्रा में हो जाता है।
- वह छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन करने लगता है।
- बच्चे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का संचय करने व रचनात्मक कार्य में रुचि लेने लगता है।
- बच्चे समूह में रहना व कार्य करना पसन्द करते हैं। साथ ही अनुकरण सहानुभूति व सहयोग आदि की सामान्य प्रवृत्तियों का विकास भी इस अवस्था में हो जाता है।
- बच्चे पढ़ने, लिखने व सीखने में रुचि लेने लगते हैं।
- खेल उनकी दिनचर्या का प्रमुख अंग बन जाता है। वह पहेली बुझाने व समस्यात्मक खेलों में रुचि लेने लगते हैं।
- बच्चे पर्यावरण की वास्तविकताओं को समझने लगते हैं और उनमें आत्मविश्वास विकसित हो जाता है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास-

- किशोरावस्था में मानसिक विकास अपनी उच्चतम सीमाओं को छू लेता है।
- किशोर-किशोरी की स्मरण शक्ति में स्थायित्व आने लगता है। उनकी कल्पना, चिंतन, तर्क, विश्लेषण, अमूर्त-चिंतन, समस्या-समाधान जैसी उच्च मानसिक शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है लेकिन वह उसका उपयोग प्रौढ़ों की तरह करने में समर्थ नहीं होते हैं।
- इस अवस्था में कल्पना की बहुलता होती है, वे कभी-कभी दिवास्वप्न भी देखते हैं।
- किशोरावस्था में शब्द भण्डार अधिक बढ़ जाता है और चिंतन, तर्क व कल्पना शक्ति के साथ इनमें वाकपटुता भी आ जाती है।
- इस अवस्था में इनकी रुचियों में तीव्र विकास होता है। आकर्षक व्यक्तित्व, वेशभूषा, पढ़ाई-लिखाई, पौष्टिक भोजन, भावी रोजगार, कम्प्यूटर, इण्टरनेट साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति इनकी विशेष रुचि होती है।
- इस अवस्था में बच्चा बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसित होता है इसलिए किशोर/किशोरियों को नये ढंग से समायोजन करना पड़ता है।

मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक	
1. वंशानुक्रम	6. बालक की शिक्षा
2. परिवार का वातावरण	7. विद्यालय
3. परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति	8. अध्यापक
4. शारीरिक स्वास्थ्य	9. समाज
5. माता-पिता की शिक्षा	

बौद्धिक विकास

बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषाएँ -

सामान्यतः सीखने, तर्क करने, चिंतन करने, कल्पना करने व अमूर्त चिंतन की योग्यता बुद्धि कहलाती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की निम्न परिभाषाएँ दी हैं–

- **बोरिंग के अनुसार–**"बुद्धि वही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है।"
- **बकिंघम के अनुसार–**"बुद्धि सीखने की योग्यता है।"
- **वुडवर्थ के अनुसार–**"बुद्धि कार्य करने की विधि है।"
- **टरमैन के अनुसार–**"बुद्धि अमूर्त विचारों के बारे में सोचने की योग्यता है।"
- **बिने के अनुसार–**"बुद्धि इन चार शब्दों में निहित है–ज्ञान, आविष्कार, निर्देश और आलोचना।"
- **रायबर्न के अनुसार–**"बुद्धि वह शक्ति है जो हमको समस्याओं का समाधान करने और उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता देती है।"
- **थॉर्नडाइक के अनुसार–**"सत्य या तथ्य के दृष्टिकोण से उत्तम प्रतिक्रिया की शक्ति ही बुद्धि है।"
- **स्टर्न के अनुसार–**"बुद्धि एक सामान्य योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति नई परिस्थितियों में अपने विचारों को जानबूझ कर समायोजित करता है।"
- **गाल्टन के अनुसार–**"बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।"

वास्तविक अर्थ में बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात शक्ति है और उसकी सब मानसिक योग्यताओं का योग एवं अभिन्न अंग है।

मोटे तौर पर बुद्धि में निम्नलिखित प्रकार की योग्यताएँ आती हैं–

- सीखने की योग्यता
- अमूर्त चिंतन करने की योग्यता
- समस्या का समाधान करने की योग्यता
- अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता
- सम्बन्धों को समझने की योग्यता
- अपने वातावरण से सामंजस्य करने की योग्यता

बुद्धि के प्रकार-

- गैरेट ने तीन प्रकार की बुद्धि का उल्लेख किया है–
  1. **मूर्त बुद्धि–**इसे 'गामक बुद्धि' या 'यांत्रिक बुद्धि' भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध यंत्रों और मशीनों से होता है।
  2. **अमूर्त बुद्धि–**इसका सम्बन्ध पुस्तकीय ज्ञान से होता है।
  3. **सामाजिक बुद्धि–**इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों से होता है।
- थॉर्नडाइक ने भी बुद्धि के तीन प्रकार बताएँ हैं–
  1. **अमूर्त बुद्धि–**शब्दों, प्रतीकों, समस्या समाधान आदि के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।
  2. **सामाजिक बुद्धि–**इसके द्वारा व्यक्ति समाज में समायोजन करता है।
  3. **यांत्रिक बुद्धि–**इसकी सहायता से व्यक्ति यंत्रों तथा भौतिक वस्तुओं का संचालन करता है।

बुद्धि के सिद्धान्त एवं उसके प्रतिपादक
1. एक कारक सिद्धान्त – **बिने, टरमैन, स्टर्न**
2. द्वि कारक सिद्धान्त – **स्पीयरमैन**
3. बहु कारक सिद्धान्त – **थॉर्नडाइक**
4. समूह कारक सिद्धान्त – **थर्सटन**
5. बुद्धि संरचना सिद्धान्त – **जे. पी. गिलफोर्ड**
6. तरल-ठोस बुद्धि सिद्धान्त – **आर. बी. कैटल**
7. बहु बुद्धि सिद्धान्त – **हॉवर्ड गार्डनर**
8. पदानुक्रमिक सिद्धान्त – **फिलिप बर्नन**
9. त्रितंत्र सिद्धान्त – **स्टेनबर्ग**

1. **एक कारक सिद्धान्त–**यह प्राचीन सिद्धान्त है। **बिने, टरमैन** तथा **स्टर्न** जैसे मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त के समर्थकों में प्रमुख हैं।

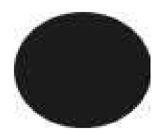

बुद्धि का एक कारक सिद्धान्त

2. **द्वि-कारक सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अंग्रेज मनोवैज्ञानिक **स्पीयरमैन** ने **वर्ष 1904** में किया था। इनके अनुसार बुद्धि **दो कारकों–सामान्य योग्यता कारक** (G - Factor) तथा **विशिष्ट योग्यता कारक** (S - Factor) से मिलकर बनी होती है। सामान्य योग्यता कारक जन्मजात योग्यता होती है। सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं को करने में इसकी आवश्यकता होती है। विशिष्ट योग्यता कारक अर्जित योग्यता होती है। यह विशिष्ट योग्यताओं का एक समूह होता है।

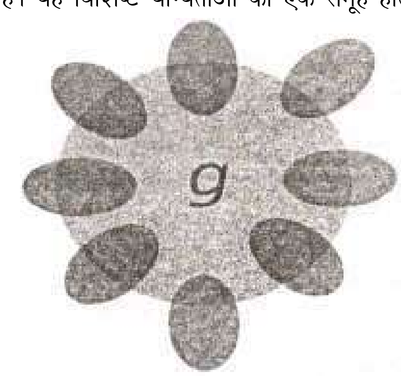

बुद्धि का द्वि-कारक सिद्धान्त

3. **बहु-कारक सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक थॉर्नडाइक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि अनेक स्वतंत्र कारकों से मिलकर बनी है।

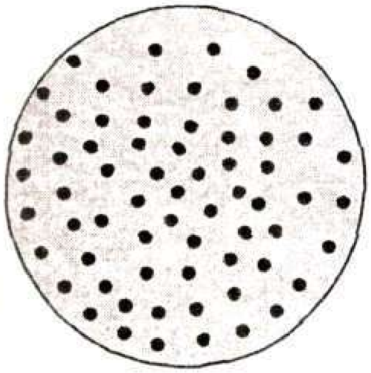

बुद्धि का बहु-कारक सिद्धान्त

4. **समूह कारक सिद्धान्त**–थर्सटन ने अपनी पुस्तक 'Primary Mental Abilities' में बुद्धि के 13 खण्ड बताए हैं जिसमें 9 अधिक महत्वपूर्ण हैं– (1) स्मृति, (2) प्रत्यक्षीकरण की योग्यता, (3) सांख्यिकी की योग्यता, (4) शाब्दिक योग्यता, (5) तार्किक योग्यता, (6) निगमनात्मक योग्यता, (7) आगमनात्मक योग्यता, (8) स्थान सम्बन्धी योग्यता, (9) समस्या-समाधान की योग्यता।

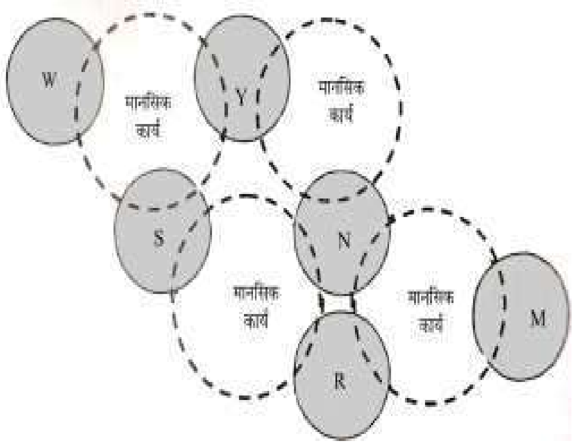

बुद्धि का समूह-कारक सिद्धान्त

5. **बुद्धि संरचना सिद्धान्त**–जे. पी. गिलफोर्ड ने बुद्धि की त्रिविमीय प्रारूप प्रस्तुत किया। इनके अनुसार बुद्धि को तीन विमाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है–**पाँच सामग्री** (दृश्विक, श्रवणिक, सांकेतिक, शाब्दिक, व्यवहारिक), **छः संक्रिया** (संज्ञान, स्मृति अभिलेखन, स्मृति धारण, परम्परागत चिंतन, मूल्यांकन) तथा **छः उत्पाद** (इकाइयाँ, वर्ग, सम्बन्ध, प्रणाली, प्रत्यावर्तन, निहितार्थ)। गिलफोर्ड तथा उनके सहयोगियों ने कहा कि कुल 180 (5 × 6 × 6) भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताएँ हो सकती हैं, जो 180 भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों में संलग्न होती हैं।

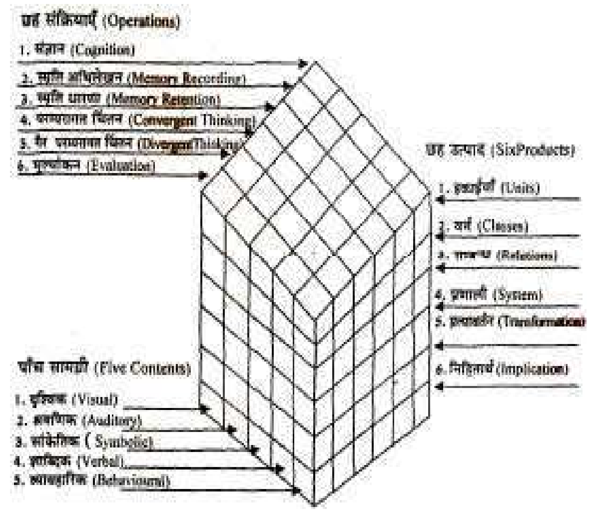

बुद्धि की संरचना का नवीनतम निदर्श

6. **तरल-ठोस बुद्धि सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन आर. बी. कैटल ने किया। इनके अनुसार बुद्धि के दो महत्वपूर्ण तत्व होते हैं–तरल बुद्धि (GP) तथा ठोस बुद्धि (GC)। तरल बुद्धि वंशानुगत कारकों द्वारा निर्धारित होती है तथा यह तर्क के आधार पर नवीन समस्याओं को हल करने की योग्यता है जबकि ठोस बुद्धि पर्यावरणीय कारकों द्वारा निर्धारित होती है तथा यह शिक्षा, प्रशिक्षण व अनुभव पर आधारित योग्यता है।

बुद्धि का तरल-ठोस सिद्धान्त

7. **बहुबुद्धि सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हॉवर्ड गॉर्डनर ने किया था। इनके अनुसार बुद्धि सात प्रकार की होती है–(1) भाषायी बुद्धि, (2) तार्किक गणितीय बुद्धि, (3) स्थानिक बुद्धि, (4) शरीर गतिकी बुद्धि, (5) संगीत बुद्धि, (6) वैयक्तिक आत्म बुद्धि तथा (7) वैयक्तिक-पर बुद्धि। गॉर्डनर के अनुसार ये सभी सातों प्रकार की बुद्धि यद्यपि परस्पर अंतर्क्रिया करती हैं फिर भी वे मुख्यतः स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। बाद में इन्होंने इसमें आठवीं बुद्धि के रूप में प्रकृतिवादी बुद्धि को जोड़ा।

   1. **भाषायी बुद्धि**–भाषायी बुद्धि वाले व्यक्ति की अन्तिम अवस्था कवि, पत्रकार, लेखक, शिक्षक, वकील, राजनीतिज्ञ, अनुवादक आदि हो सकती है।
   2. **तार्किक गणितीय बुद्धि**–ऐसे बुद्धि वाले व्यक्ति की अन्तिम अवस्था वैज्ञानिक, इंजीनियर, कम्प्यूटर प्रोग्रामर, शोधकर्ता, लेखपाल, गणितज्ञ आदि हो सकती है।
   3. **स्थानिक बुद्धि**–इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्ति की अन्तिम अवस्था शिल्पकार, दृष्टिकलाकार, अन्वेषक, ऑर्किटेक्ट, आंतरिक डिजाइनर्स, मैकेनिक, इंजीनियर्स आदि हो सकती है।
   4. **शरीर गतिकी बुद्धि**–ऐसे बुद्धि वाले व्यक्ति डॉक्टर, नर्तक, एथलीट, अभिनेता, अग्निशमन दल के सदस्य, कारीगर आदि कैरियर के रूप में चुन सकते हैं।

5. **संगीत बुद्धि–**संगीत बुद्धि वाले व्यक्ति की अन्तिम अवस्था संगीतकार, गायक, वादक आदि हो सकती है।
6. **वैयक्तिक आत्म बुद्धि–**ऐसे बुद्धि वाले व्यक्ति अनुसंधानकर्ता, दार्शनिक सिद्धान्त प्रणेता के रूप में अपने कैरियर को चुन सकते हैं।
7. **वैयक्तिक पर बुद्धि–**इस प्रकार के बुद्धि वाले व्यक्ति की अन्तिम अवस्था परामर्शदाता, विक्रेता, राजनीतिज्ञ, व्यापारी आदि हो सकती है।

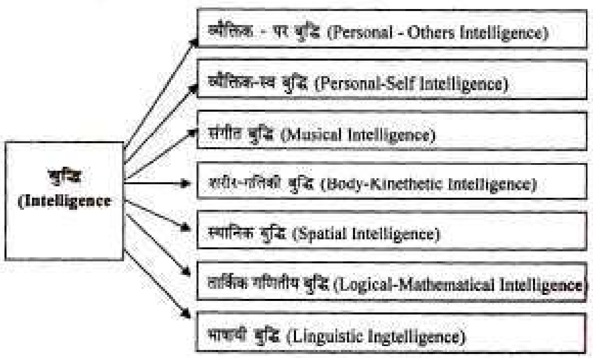

बहु-बुद्धि सिद्धान्त

8. **पदानुक्रमिक सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फिलिप बर्नन ने किया था। इन्होंने मानवीय योग्यताओं की पदानुक्रमिक संरचना प्रस्तुत की एवं कहा कि मानवीय योग्यताएँ एक क्रमिक रूप में व्यवस्थित होती हैं। इस क्रमबद्ध व्यवस्था में क्रमशः सामान्य कारक, मुख्य समूह कारक, लघु समूह कारक तथा विशिष्ट कारक होते हैं।
9. **त्रितंत्र सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रॉबर्ट स्टैनबर्ग ने किया था। इन्होंने बुद्धि के तीन उपसिद्धान्त बताएँ हैं–(1) संदर्भात्मक उप-सिद्धान्त, (2) अनुभवजन्य उप-सिद्धान्त, (3) घटक उप-सिद्धान्त।

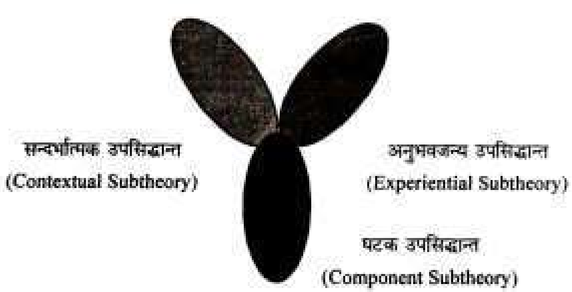

बुद्धि का त्रितन्त्र सिद्धान्त

(1) संदर्भात्मक उप-सिद्धान्त को प्रसंगात्मक बुद्धि भी कहा जाता है। संदर्भात्मक उप-सिद्धान्त अपने वातावरण के साथ अनुकूलतम् समायोजन करने की योग्यता से सम्बन्धित है।

(2) अनुभवजन्य उप-सिद्धान्त को अनुभवजन्य बुद्धि भी कहा जाता है। इसका सम्बन्ध अनुभवों से प्राप्त व्यवहारिक ज्ञान से है।

(3) घटक उप-सिद्धान्त को घटकीय बुद्धि भी कहा जाता है। इसका सम्बन्ध विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक ढंग से चिंतन करने की क्षमता से है।

बुद्धि लब्धि
(Intelligence Quotient)

- अल्फ्रेड बिने तथा थिओडोर साइमन नामक दो विद्वानों ने वर्ष 1905 में प्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जिसे बाद में 1905 का बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण कहा गया था।
- इन्होंने तर्क, निर्णय, स्मृति, अंकगणना जैसे विभिन्न मानसिक कार्यों से सम्बन्धित कुल 30 प्रश्नों का चयन किया तथा उन्हें कठिनता के बढ़ते क्रम में व्यवस्थित किया।
- वर्ष 1908 में इस परीक्षण में संशोधन करके प्रश्नों की संख्या 59 कर दी गयी तथा इन्हें आयुवार (3 वर्ष से 13 वर्ष तक के) वर्गों में बाँटा गया।
- इसी परीक्षण निर्माण के दौरान बिने ने **मानसिक आयु के संप्रत्यय** का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार किसी व्यक्ति की मानसिक आयु उस व्यक्ति के मानसिक विकास की अवस्था को बताती है।
- जिस उच्चतम आयु स्तर के सभी प्रश्नों को बालक सही हल करता है, उसे **आधार वर्ष** (Basal Year) कहते हैं।
- जिस आयु स्तर का कोई भी प्रश्न वह हल नहीं कर पाता है उसे उस बालक के लिए **टर्मिनल वर्ष** कहते हैं।
- मानसिक आयु का व्यक्ति की वास्तविक आयु से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।
- वर्ष 1912 में विलियम स्टर्न तथा कुहलमान् ने मानसिक आयु के प्रयोग की परेशानी को देखते हुए, मानसिक आयु व वास्तविक आयु के अनुपात को **बुद्धि लब्धि या (I.Q.)** के रूप में प्रयोग करने का सुझाव दिया। आई. क्यू. जर्मन शब्द 'Intelligenj–Quotient' से बना है।
- परन्तु बुद्धि लब्धि का विकास टरमैन द्वारा वर्ष 1916 में प्रकाशित स्टैनफोर्ड–बिने परीक्षण के बाद ही हो पाया।
- टरमैन ने मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात में 100 का गुणा करके बुद्धि लब्धि ज्ञात करने का सूत्र दिया–

$$\text{बुद्धि लब्धि I.Q.} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

$$\left(\text{I.Q.} = \frac{\text{M.A.}}{\text{C.A.}} \times 100 \right)$$

जहाँ – M.A. = मानसिक आयु

C.A. = वास्तविक आयु

उदाहरण–यदि किसी बालक की मानसिक आयु 10 वर्ष व वास्तविक आयु 8 वर्ष है तो बुद्धि लब्धि होगी–

$$\text{I.Q.} = \frac{10}{8} \times 100 = 125$$

अतः बुद्धि लब्धि 125 होगी।

ध्यातव्य है कि बिने तथा साइमन फ्रांस के रहने वाले थे तथा उन्होंने अपने परीक्षण का निर्माण फ्रांस के सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप किया था। इस परीक्षण की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए अमेरिका के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. लेविस एम. टरमैन व उनके सहयोगियों ने अमेरिका के सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप इस परीक्षण में अनुकूलन व परिमार्जन किया तथा इसका नाम 'स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण' रखा, जो बहुत प्रसिद्ध हुआ।

- टरमैन ने वर्ष 1916 के स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण के साथ बुद्धि लब्धि के वितरण की तालिकाएँ भी तैयार की थीं, जिनमें विभिन्न बुद्धि-लब्धि वर्गों के लिए बालकों व व्यक्तियों की प्रतिशत संख्याएं भी दी गयी थी। यह तालिका निम्न हैं–

बुद्धि लब्धि	बुद्धि के प्रकार	प्रतिशत
140 से अधिक	प्रतिभाशाली	2%
121–139	प्रखर बुद्धि	7%
111–120	तीव्र बुद्धि	16%
91–110	सामान्य बुद्धि	50%
81–90	मंद बुद्धि	16%
71–80	अल्प बुद्धि (क्षीण बुद्धि)	7%
71 से कम	जड़ बुद्धि (निश्चित क्षीण बुद्धि)	2%

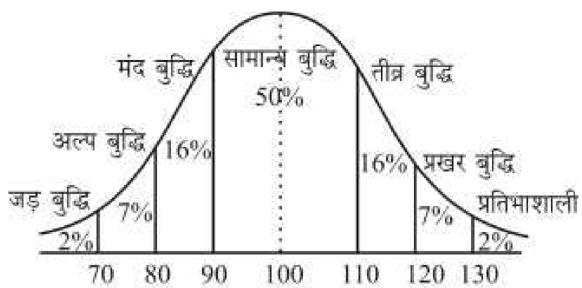

बुद्धि लब्धि वक्र

बुद्धि परीक्षण–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने समय-समय पर विभिन्न बुद्धि परीक्षण बनाये हैं। इनको मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. **वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण–**एक समय में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है। इसका आरम्भ बिने ने किया था।
2. **सामूहिक बुद्धि परीक्षण–**इसमें अनेक व्यक्तियों का परीक्षण किया जाता है। इसका विकास प्रथम विश्वयुद्ध के समय अमेरिका में हुआ।

बुद्धि परीक्षणों में विषय-वस्तु तथा प्रत्युत्तरों के प्रस्तुतीकरण के आधार पर उन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

1. **शाब्दिक बुद्धि परीक्षण–**इसमें भाषा का प्रयोग किया जाता है व अमूर्त बुद्धि की परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षा में निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं–अंकगणित के प्रश्न, व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न, निर्देश के अनुसार प्रश्नों के उत्तर, समानार्थी या विलोम शब्द आदि।
2. **अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण–**इसका प्रयोग उन व्यक्तियों पर किया जाता है, जिनको पढ़ना-लिखना नहीं आता है। इसके द्वारा मूर्त बुद्धि का पता लगाया जाता है। इनमें निम्न प्रकार के कार्य दिये जाते हैं–चित्र के बिखरे हुए टुकड़ों को क्रम से लगाकर चित्र पूरा करना, तिकोनी, चौकोर व गोल वस्तुओं को रखकर आकृति को पूरा करना आदि।

कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम

वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	1. बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण 2. स्टैनफोर्ड-बिने बुद्धि परीक्षण
वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण	1. पोर्टियस भूल-भुलैया परीक्षण 2. वेश्लर बेल्यूव टेस्ट
सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	1. आर्मी अल्फा टेस्ट 2. सेना सामान्य वर्गीकरण टेस्ट
सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण	1. आर्मी बीटा टेस्ट 2. शिकागो अशाब्दिक टेस्ट

भारत में बुद्धि परीक्षण का इतिहास

- वर्ष 1912 में सी. एच. राइस ने बिने साइमन बुद्धि परीक्षण का भारतीय अनुकूलन किया जिसका नाम 'हिन्दुस्तानी-बिने परीक्षण' रखा।
- वर्ष 1927 में डॉ. जे. मनरो ने हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा में शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया।
- वर्ष 1954 में मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश द्वारा सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया गया।
- पंजाब विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. एस. जलोटा ने सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण का निर्माण किया।

बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता-

विभिन्न आयु वर्ग के लिए निर्मित परीक्षणों के माध्यम से हम बालक की बुद्धि का पता लगाकर उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। बुद्धि परीक्षण की निम्नलिखित उपयोगिता हो सकती है–

- सर्वोत्तम बालक का चुनाव करने में
- पिछड़े बालकों का चुनाव करने में
- अपराधी व समस्यात्मक बालकों का सुधार करने में
- बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य करवाने में
- अपव्यय का निवारण करने में
- राष्ट्र को बालकों की बुद्धि का ज्ञान कराने में
- बालकों की भावी सफलता का ज्ञान करने में
- बालकों का वर्गीकरण करने में
- बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का ज्ञान करने में

विभिन्न अवस्थाओं में संज्ञानात्मक विकास

पियाजे का सिद्धान्त-

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को मुख्य रूप से चार कालों में विभाजित किया है–

1. संवेदी-पेशीय अवस्था
2. प्राक संक्रियात्मक अवस्था
3. मूर्त संक्रिया अवस्था
4. औपचारिक संक्रिया अवस्था

1. संवेदी पेशीय अवस्था-

यह अवस्था जन्म के उपरान्त प्रथम दो वर्षों तक चलती है। इस अवस्था के बच्चे अपनी इन्द्रियों द्वारा प्राथमिक अनुभव प्राप्त करते हैं। इस अवस्था को पियाजे ने छः उप-अवस्थाओं में बाँटा है–

1. **सहज क्रियाओं की अवस्था–**यह अवस्था जन्म से 30 दिन तक होती है। इसमें शिशु केवल सहज क्रिया करता है। इनमें वस्तु को लेकर चूसने की क्रिया सबसे प्रबल होती है।
2. **प्रमुख वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था–**एक माह से चार माह तक के बच्चों की सहज क्रियाएँ कुछ सीमा तक उनकी अनुभूतियों के आधार पर परिवर्तित होती हैं, दोहराई जाती है और समन्वित होती हैं।
3. **गौण वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था–**यह अवस्था चार माह से आठ माह की होती है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं को स्पर्श करने व इधर-उधर करने की अनुक्रियाएँ करते हैं।
4. **गौड़ स्कीमेटा के समन्वय की अवस्था–**यह अवस्था 8–12 महीने तक चलती है। इस अवस्था में शिशु, उद्देश्य और उसको प्राप्त करने के साधन में अन्तर करने लगते हैं व बड़ों का अनुकरण करने लगते हैं।
5. **तृतीय वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था–**यह अवस्था 12–18 महीने की होती है। इसमें बच्चे वस्तुओं के गुणों को प्रयत्न व भूल द्वारा सीखते व जानते हैं।
6. **मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों के खोज की अवस्था–** यह 18-24 माह की अवस्था है। इस अवस्था में देखी हुई वस्तु की अनुपस्थिति में भी उसके अस्तित्व को समझने लगते हैं। अर्थात् उसमें वस्तु-स्थायित्व का गुण आ जाता है।

2. प्राक् संक्रियात्मक अवस्था-

* **यह अवस्था लगभग 2 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होकर 7 वर्ष की अवस्था तक चलती है।** इस अवस्था को दो भागों में बाँटा जा सकता है–(i) प्राक् संक्रियात्मक काल या पूर्व-प्रत्ययात्मक काल, (ii) अन्तर्दर्शी अवस्था या आंत-प्रज्ञ काल।

(i) प्राक् संक्रियात्मक काल 2–4 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में बच्चे अपने इधर-उधर की वस्तुओं, प्राणियों व शब्दों में सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं। वे अनुकरण द्वारा सीखने लगते हैं। पियाजे के अनुसार 4 वर्ष तक की अवस्था के बच्चे सभी निर्जीव वस्तुओं को सजीव के रूप में देखते हैं। इनमें अहं-केन्द्रिता की भावना प्रबल होती है। वे मानते हैं कि दुनिया उनके इर्द-गिर्द ही है।

(ii) अंतर्दर्शी अवस्था 4–7 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में बालक भाषा सीखने लगता है, चिंतन व तर्क करने लगता है। परन्तु उसके तर्क व चिंतन में कोई क्रमबद्धता नहीं होती है। छः वर्ष की आयु पूरी करते-करते बालकों में मूर्त प्रत्ययों के साथ अमूर्त प्रत्ययों का निर्माण होने लगता है।

3. मूर्त-संक्रिया अवस्था -

पियाजे ने 7 से 11 वर्ष की आयु को मूर्त संक्रिया की अवस्था कहा है। मूर्त संक्रिया अवस्था के दौरान बालक तीन गुणात्मक मानसिक योग्यताओं में पर्याप्त निपुणता हासिल कर लेता है। ये तीन योग्यताएँ हैं–**विचारों की विलोमीयता, संरक्षण तथा क्रमबद्धता** व **पूर्ण-अंश संप्रत्ययों का उपयोग।** इस अवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) बच्चे अधिक व्यवहारिक व यथार्थवादी होते हैं।

(ii) बच्चों में तर्क एवं समस्या समाधान की क्षमता का विकास होने लगता है।

(iii) मूर्त समस्याओं का समाधान बच्चे ढूढ़ने लगते हैं। परन्तु अमूर्त समस्याओं को नहीं समझ पाते हैं।

(iv) बच्चे वस्तुओं को उनके गुणों के आधार पर क्रमबद्ध व वर्गीकृत करने लगते हैं।

(v) इस अवस्था में बच्चों के चिंतन में क्रमबद्धता नहीं होती है।

(vi) इस अवस्था में बच्चों में आत्मकेन्द्रिता की भावना कम होने लगती है।

4. औपचारिक संक्रिया अवस्था -

यह संज्ञानात्मक विकास की अन्तिम अवस्था है, जो लगभग 11 से 15 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

(i) उसके चिंतन में क्रमबद्धता आने लगती है।

(ii) जैसे-जैसे बच्चों की आयु बढ़ती है, उनके अनुभव बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनके समस्या-समाधान की क्षमता बढ़ती है, जिसे पियाजे ने **'सम्प्रत्यय चिंतन'** की संज्ञा दी है।

(iii) पियाजे के अनुसार इस आयु के बच्चे प्रतीकात्मक शब्दों, रूपकों व उपमानों का आशय समझने लगते हैं व अमूर्त प्रत्ययों का भी निर्माण करते हैं।

(iv) पियाजे के अनुसार प्रत्यय निर्माण की यह क्रिया अनवरत रूप से जीवन भर चलती है, जिसका प्रकार व स्तर उसकी शिक्षा व अनुभवों पर निर्भर करता है।

विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास

संवेग का अर्थ एवं परिभाषाएँ-

संवेग को अंग्रेजी में 'इमोशन' (Emotion) कहते हैं। Emotion शब्द अंग्रेजी के दो शब्दों 'E' (अंदर से) तथा मोशन 'Motion' (गति) से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ आंतरिक भावों को बाहर की ओर गति देने से है। हिन्दी शब्द 'संवेग' का शाब्दिक अर्थ भी वेग से युक्त अर्थात् जब व्यक्ति वेगवान होकर कार्य करता है तो उसे संवेग कहते हैं। कुछ विद्वानों ने संवेग की निम्न परिभाषाएँ दी हैं–

- **वुडवर्थ के अनुसार–**''संवेग व्यक्ति के गति में अथवा आवेश में आने की स्थिति है।''
- **क्रो व क्रो के अनुसार–**''संवेग वह भावात्मक अनुभूति है, जो व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक उत्तेजनापूर्ण अवस्था तथा सामान्यीकृत आंतरिक समायोजन के साथ जुड़ी होती है और जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित वाह्य व्यवहार द्वारा होती है।''

संवेगों की विशेषताएँ -

- संवेग विश्व भर के सभी प्राणियों में पाये जाते हैं।
- *** संवेगों के उत्पन्न होने पर अस्थायी शारीरिक/दैहिक परिवर्तन होता है।**
- *** सांवेगिक दशा में व्यक्ति की विचार प्रक्रिया शिथिल या विलुप्त हो जाती है।**
- संवेग की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत होती है।
- संवेग की प्रकृति अस्थायी होती है।
- संवेग कभी-कभी अन्य परिस्थितियों में स्थानान्तरित हो जाती हैं।
- संवेगों की उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों से होती है।
- *** संवेगों का सम्बन्ध क्रियात्मक/व्यवहारात्मक प्रवृत्तियों से होता है।**

संवेगों के प्रकार -

डेकॉर्ट ने संवेगों को छः प्रकार में वर्गीकृत किया है–(i) प्रशंसा, (ii) प्यार, (iii) घृणा, (iv) इच्छा, (v) हर्ष, (vi) शोक

स्पिनोजा के अनुसार संवेगों के प्रकार–

(i) हर्ष, (ii) शोक, (iii) इच्छा

वाटसन के अनुसार संवेगों के प्रकार–

(i) भय, (ii) क्रोध, (iii) प्रेम

जार्जन्सेन के अनुसार संवेगों के प्रकार–(i) भय, (ii) खुशी, (iii) शोक, (iv) इच्छा, (v) क्रोध, (vi) लज्जा

शैण्ड के अनुसार संवेगों के प्रकार

(i) जिज्ञासा, (ii) घृणा, (iii) विरक्ति, (iv) आश्चर्य, (v) अधीनता, (vi) उत्साह, (vii) कोमलता

जेम्स के अनुसार संवेगों के प्रकार-

जेम्स ने **स्थूल संवेगों** में दुःख, भय, क्रोध तथा प्रेम को रखा है एवं **सूक्ष्म संवेगों** में नैतिकता, बौद्धिकता, सौन्दर्यभाव को रखा है।

मैक्डूगल के अनुसार संवेगों के प्रकार

मैक्डूगल ने 14 मूल प्रवृत्तियों के आधार पर 14 प्रकार के संवेग बताए हैं, जिसमें प्रत्येक मूलप्रवृत्ति से सम्बन्धित एक संवेग है। इनको निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

क्रम	मूल प्रवृत्ति	संवेग
1.	पलायन	भय
2.	युयुत्सा या लड़ना	क्रोध
3.	विकर्षण या निवृत्ति	घृणा
4.	संतान कामना	वात्सल्य
5.	प्रार्थना या शरणागति	करुणा
6.	काम प्रवृत्ति	कामुकता
7.	उत्सुकता या जिज्ञासा	आश्चर्य
8.	वितीतता या दैन्य	आत्महीनता
9.	आत्म गौरव	आत्म-अभिमान
10.	सामूहिकता	एकाकीपन
11.	भोजन तलाश	भूख
12.	संग्रहण	अधिकार
13.	रचनाधर्मिता	कृतिभाव
14.	हास या हँसना	आमोद

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास-

जब व्यक्ति अपने संवेगों जैसे–भय, क्रोध, प्रेम आदि का सही प्रकाशन करना सीख लेता है तो यह माना जाता है कि उसका संवेगात्मक विकास हो गया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सभी संवेग जन्मजात् नहीं होते हैं वरन् उनका विकास धीरे-धीरे होता है। शैशवावस्था की निम्नलिखित संवेगात्मक विशेषताएँ होती हैं–

- शिशुओं का संवेगात्मक विकास धीरे-धीरे अस्पष्टता से स्पष्टता की ओर बढ़ता है।
- विशिष्ट संवेग मंद गति से स्वभाव के साथ जुड़ता है।
- शारीरिक विकास के साथ-साथ संवेगात्मक विकास में तीव्रता होती है।
- शैशवावस्था के प्रारम्भ में मुख्यतया भय, क्रोध व प्रेम आदि तीन ही संवेगों का विकास होता है।
- शिशु का संवेगात्मक व्यवहार अत्यधिक अस्थिर होता है।
- मनोवैज्ञानिक ब्रिजेज ने विभिन्न संवेगों के उदय होने की औसत आयु की सारणी दी है जो निम्न हैं–

आयु	संवेग									
जन्म के समय	उत्तेजना									
1 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द							
3 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द	क्रोध						
6 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द	क्रोध	घृणा	भय				
12 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास		
18 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या	
24 माह	उत्तेजना	पीड़ा	आनन्द	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या	खुशी-प्रशन्नता

- शैशवावस्था के अन्तिम चरण में वातावरण संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने लगते हैं।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास-

संवेगात्मक विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था को 'एक अनोखी अवस्था' स्वीकार किया जाता है। इस अवस्था में संवेगात्मक विकास की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

- इस अवस्था में संवेगों में स्थायित्व आना प्रारम्भ हो जाता है।
- बालक संवेग व समाज के नियमों में समायोजन करने लगता है।
- वह प्रत्येक क्रिया के प्रति प्रेम, ईर्ष्या, घृणा व प्रतिस्पर्द्धा की भावना प्रकट करने लगता है।

- माता-पिता द्वारा बताये कार्य के प्रति वह हाँ या न कहकर चुप रहता है और बाद में झूठ बोलकर अपने को उपेक्षा से बचाता है।
- इस अवस्था के अन्तिम चरणों में वह संवेगों पर नियंत्रण करना सीख जाता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास-

इस अवस्था में संवेगात्मक व्यवहार में अनेक परिवर्तन आते हैं तथा इस अवस्था में सबसे अधिक संवेगात्मक अस्थिरता पायी जाती है। किशोरावस्था में होने वाले संवेगात्मक विकास की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- किशोरावस्था का जीवन अत्यधिक भाव प्रधान होता है। किशोर या किशोरियों में दया, प्रेम, क्रोध, सहानुभूति, सहयोग आदि भाव व प्रवृत्तियाँ अधिक प्रबल हो जाती हैं।
- किशोर या किशोरी के शारीरिक शक्ति की उनके संवेगों पर छाप होती है जैसे–सबल या स्वस्थ्य किशोर में संवेगात्मक स्थिरता व निर्बल या अस्वस्थ किशोर में संवेगात्मक अस्थिरता पायी जाती है।
- किशोर या किशोरी अपनी आकृति, स्वास्थ्य, सम्मान, धन प्राप्ति, शैक्षिक प्रगति, सामाजिक सफलता आदि के प्रति चिंतित रहते हैं।
- किशोरावस्था में किशोर-किशोरियों में काम-भावना, व्यवहार के केन्द्रिय तत्व के रूप में कार्य करती है।
- किशोरावस्था में स्वाभिमान की भावना अत्यन्त प्रबल होती है।
- किशोर व किशोरी एक ही परिस्थिति में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं। जो परिस्थिति एक अवसर पर उन्हें उल्लास से भर देती है, वही परिस्थिति दूसरे अवसर पर उन्हें खिन्न कर देती है।
- किशोर न तो बालक समझा जाता है न प्रौढ़। अतः उसे अपने संवेगात्मक जीवन में वातावरण से अनुकूलन में कठिनाई होती है। यदि वह अपने प्रयास में असफल रहता है तो उसे घोर निराशा होती है।
- किशोरावस्था में स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती है।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक	
■ वंशानुक्रम	■ परिवार का वातावरण
■ वातावरण	■ अभिभावकों का दृष्टिकोण
■ स्वास्थ्य	■ सामाजिक-आर्थिक स्थिति
■ थकान	■ सामाजिक स्वीकृति
■ मानसिक योग्यता	■ विद्यालय

विभिन्न अवस्थाओं में सामाजिक विकास

सामाजिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा

➢ **फ्रीमैन शॉवेल के अनुसार–**''सामाजिक विकास सीखने की वह प्रक्रिया है, जो समूह के स्तर, परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों के अनुकूल अपने आपको ढालने तथा एकता, मेलजोल, और पारस्परिक सहयोग की भावना भरने में सहायक होती है।''

➢ **हरलॉक के अनुसार–**''सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना है।''

➢ **सोरेन्सन के अनुसार–**''सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का अर्थ है अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता की वृद्धि।''

अतः इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक विकास से तात्पर्य विकास की उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन करता है, सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं व रुचियों पर नियंत्रण करता है, दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करता है तथा अन्य व्यक्तियों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास-

शिशु जन्म से सामाजिक नहीं होता है। जन्म के बाद अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। इस प्रकार सामाजिक प्रक्रिया प्रथम सम्पर्क में प्रारम्भ होकर जीवनपर्यंत चलती है। हम शिशु के सामाजिक विकास को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं–

आयु		**सामाजिक व्यवहार का रूप**
प्रथम माह	–	तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया एवं ध्वनियों में अन्तर
द्वितीय माह	–	मानव ध्वनि पहचानना, मुस्कुराकर स्वागत करना
तृतीय माह	–	माता के लिए प्रसन्नता व माता के अभाव में दुःख
चतुर्थ माह	–	परिवार के सदस्यों को पहचानना
पंचम माह	–	प्रसन्नता व क्रोध में प्रतिक्रिया व्यक्त करना
षष्ठम् माह	–	परिचितों से प्यार व अन्य लोगों से भयभीत होना
सप्तम माह	–	अनुकरण के द्वारा हाव-भाव सीखना
अष्टम व नवम् माह	–	हाव-भाव के द्वारा विभिन्न संवेगों (प्रसन्नता, क्रोध, भय) का प्रदर्शन करना।
दशम एवं ग्यारहवें माह में	–	अनुचित कार्य को मना करने पर मान जाना।
दूसरे वर्ष में	–	बड़ों के कार्य में सहायता देना, सहयोग, सहानुभूति का विकास
तीसरे वर्ष	–	पास-पड़ोस के अन्य बालकों से सम्पर्क बनाना।
चौथे वर्ष	–	नर्सरी विद्यालय के नये वातावरण के साथ समायोजन।
पाँचवें वर्ष	–	नैतिकता का विकास, सामाजिक परिपक्वता का विकास।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास-

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- इस अवस्था में बालक-बालिकाएं किसी न किसी टोली का सदस्य बन जाते हैं। यह टोली ही उनके विभिन्न खेलों, वस्त्रों को पसन्द तथा अन्य उचित-अनुचित बातों का निर्धारण करते हैं।
- इस अवस्था के बालक-बालिकाओं में उत्तरदायित्व, सहयोग, साहस, सहनशीलता, सद्भावना, आत्मनियंत्रण, न्यायप्रियता आदि गुणों का विकास होने लगता है।
- इस अवस्था में बच्चे मित्र बनाने लगते हैं।
- इस आयु में बच्चे आत्म-निर्भर होने का प्रयास करते हैं। वे घर से बाहर निकलकर अन्य बालकों के साथ समय बिताते हैं, कार्य करते हैं व निर्णय भी लेते हैं। उनमें आत्म-सम्मान की मात्रा अधिक होती है।
- बाल्यावस्था में चारित्रिक व नागरिक गुणों आदि का विकास होता है। वे अपने माता-पिता, अध्यापक आदि के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं और उसकी विशेषताओं को सीखते हैं।
- इस अवस्था में बच्चों में नेता बनने की भावना दिखाई देती है व सामाजिक प्रशंसा व स्वीकृति प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है।
- प्यार तथा स्नेह से वंचित बालक-बालिका इस आयु में प्रायः उदण्ड हो जाते हैं।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास-

किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप निम्नांकित होता है–

- इस अवस्था में किशोर-किशोरी में आत्मप्रेम की भावना बहुत अधिक होती है। वे अपने वेश-भूषा पर विशेष ध्यान देते हैं तथा स्वयं को आकर्षक बनाने में अधिक समय व्यतीत करते हैं।
- किशोर व किशोरियों में विषम लिंगीय आकर्षण होने लगता है। वे एक दूसरे के साथ समय बिताने के लिए उत्सुक रहते हैं।
- इस आयु में बच्चे अपने समूह के सक्रिय व प्रतिष्ठित सदस्य बन जाते हैं और वे समूह के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं।
- इस आयु में बच्चों में आत्म सम्मान की भावना बहुत अधिक होती है और वे अपने को बच्चा न मानकर वयस्क मानते हैं।
- किशोर व किशोरी में संवेगों की तीव्र अभिव्यक्ति होती है। वे अपनी इच्छाओं को समाज के मापदण्ड के खिलाफ भी पूरा करना चाहते हैं। इसलिए उनके समायोजन में अस्थिरता आ जाती है।
- किशोर व किशोरी के अन्दर सामाजिक चेतना की जागृति ही भावी राष्ट्रीय एकता व मानवीय एकता के लिए प्रारम्भिक प्रयास है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक	
1. वंशानुक्रम	7. विद्यालय
2. शारीरिक तथा मानसिक विकास	8. अध्यापक
3. संवेगात्मक विकास	9. राजनीतिक दल
4. परिवार	10. धार्मिक संस्थाएँ
5. आर्थिक स्थिति	11. रेडियो व दूरदर्शन जैसे जनसंचार माध्यम
6. समाज	

विभिन्न अवस्थाओं में भाषा विकास–अभिव्यक्ति क्षमता का विकास

भाषा विकास का अर्थ एवं परिभाषाएँ -

- **वेबस्टर के अनुसार–**''भाषा भाव या विचार को अभिव्यक्त करने या संचारित करने का मौखिक या अन्यथा कोई साधन है।''
- **स्वीट के अनुसार–**''भाषा, ध्वनियों द्वारा मानव के भावों की अभिव्यक्ति है।''
- **हरलॉक के अनुसार–**''भाषा में सम्प्रेषण (विचारों का आदान-प्रदान) के वे सभी साधन आते हैं, जिसमें विचारों और भावों को प्रतीकात्मक बना दिया जाता है, जिससे कि अपने विचारों और भावों को दूसरों से अर्थपूर्ण ढंग से कहा जा सके। लिखना, पढ़ना-बोलना, मुखात्मक अभिव्यक्ति, हाव-भाव संकेतों का प्रयोग तथा कलात्मक अभिव्यक्तियाँ आदि भाषा में ही सम्मिलित हैं।''

इस प्रकार भाषा विकास से तात्पर्य–ऐसी योग्यता से होता है जो बालक की परिपक्वता के अनुपात में उसे अपने भावों तथा विचारों को दूसरों तक पहुँचाने तथा दूसरों के भावों तथा विचारों को ग्रहण करने में सहायक होती हैं।

भाषा विकास के सोपान-

मनोवैज्ञानिकों ने बालकों के भाषा विकास की प्रक्रिया को दो सोपानों में वर्गीकृत किया है–

1. पूर्व-वाक् भाषा विकास अवस्था
2. पश्च-वाक् भाषा विकास अवस्था

1. पूर्व-वाक् भाषा विकास-

जन्म से 15 महीने तक की अवस्था को पूर्व वाक् भाषा विकास की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में बालक अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं, परेशानियों आदि को अपने गामक क्रियाओं या अभिव्यक्तात्मक वाचकता आदि के द्वारा अभिव्यक्त करता है। पूर्व-वाक् भाषा अवस्था को निम्न चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

A. रूदन–रूदन नवजात शिशु का सबसे पहला ध्वनीय वाचकता होती है।

B. बड़बड़ाना–अर्थपूर्ण प्रतीत होने वाली ध्वनियों को बड़बड़ाना कहा जाता है। प्रथम दो महीनों में बालक रोने के साथ-साथ कुछ अन्य अस्पष्ट ध्वनियाँ करने लगता है, जो आकस्मिक क्रियाओं द्वारा अपने-आप उत्पन्न होती हैं। जब बालक 7–8 महीने का होता है तब वह ये ध्वनियाँ जानबूझकर करता है और ये ध्वनियाँ अर्थ पूर्ण प्रतीत होने लगती हैं जैसे–मामा, दा-दा, नाना आदि। यही ध्वनियाँ बड़बड़ाना कहलाती हैं।

C. हाव-भाव–हाव-भाव से तात्पर्य शरीर के अंगों द्वारा की गयी सार्थक क्रियाओं से है। हाव-भाव का प्रयोग बालक तब तक करता है जब तक कि वह शब्दों व वाक्यों के रूप में अपने को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हो जाता है।

D. सांवेगिक अभिव्यक्ति–शिशु अपने सुखद संवेगों को हँसकर, खिलखिलाकर, अपनी बाँहों को फैलाकर अभिव्यक्त करता है जबकि दुःखद संवेगों को रोकर, सिसककर, सहमकर, अभिव्यक्त करता है।

2. पश्च-वाक् भाषा विकास-

पन्दह माह के बाद की अवस्था को पश्च-वाक् भाषा विकास की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में बालक अपनी आवश्यकताओं, परेशानियों, इच्छाओं, भावों, विचारों आदि को शब्दों वाक्यों अथवा भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। इस अवस्था को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) भाषा अवबोध–भाषा विकास की महत्वपूर्ण विशेषता भाषा अवबोधन होता है। शिशु प्रारम्भ में दूसरों के भाषा को समझने की योग्यता अपने में विकसित करता है। इसके लिए वह परिजनों के हाव-भाव तथा मुखाकृति अभिव्यक्ति के आधार पर उनके द्वारा बोले जाने वाले शब्दों व वाक्यों को समझने का प्रयास करता है।

(ii) शब्दावली निर्माण–पश्च-वाक् भाषा विकास का दूसरा सोपान बालक द्वारा स्वयं की शब्दावली का निर्माण करना है। साधारणतः एक वर्ष का बालक 10 शब्दों, डेढ़ वर्ष का बालक 30 शब्दों तथा 2 वर्ष का बालक 200–300 शब्दों का प्रयोग करने लगता है। बालक के स्कूल में पहुँचने पर उसका शब्द भण्डार अत्यन्त तेजी से बढ़ता है।

(iii) वाक्य संगठन–लगभग 2 वर्ष का बालक शब्दों की सहायता से वाक्य बनाने का प्रयास करने लगता है। किन्तु ये वाक्य अस्पष्ट तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपूर्ण होते हैं। जब बालक 5 साल का हो जाता है तो सभी शब्दों को समझते हुए छोटे-छोटे वाक्यों को सही ढंग से बनाना व बोलना सीख जाता है।

भाषा की प्रगति

आयु	शब्द
जन्म से आठ माह	0 शब्द
10 माह	1
1 वर्ष	3–10
1 वर्ष 3 माह	19
1 वर्ष 6 माह	22–30
1 वर्ष 9 माह	118
2 वर्ष	200–300
4 वर्ष	1550
5 वर्ष	2072
6 वर्ष	2562

(iv) सही उच्चारण–बालक अपने परिजनों या अन्य व्यक्तियों के अनुकरण द्वारा शब्दों का उच्चारण करना सीखता है। प्रारम्भ में बालक अस्पष्ट तथा अपूर्ण उच्चारण करता है। धीरे-धीरे अशुद्धता को दूर करके शुद्ध उच्चारण सीखता है।

(v) भाषा स्वामित्व–यह पश्च-वाक् भाषा का अन्तिम सोपान होता है। इस सोपान के अन्तर्गत बालक लिखित तथा मौखिक दोनों भाषा पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण अर्जित करता है।

इन्हें भी जानें–

हाइडर नामक मनोवैज्ञानिक ने अध्ययन करके निम्न परिणाम प्राप्त किये–

- बालिकाओं की भाषा का विकास बालकों की अपेक्षा तेजी से होता है।
- अपनी बात को ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता बालिकाओं में अधिक होती है।
- बालकों की अपेक्षा बालिकाओं के वाक्यों में शब्द संख्या अधिक होती है।
- भाषा विकास पर बच्चे के स्वास्थ्य (शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य) बुद्धि व वाणी दोष, सामाजिक, आर्थिक स्तर आदि का प्रभाव पड़ता है।

भाषा विकास का क्रम-

भाषा विकास के पाँच प्रमुख क्रमों को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है–

1. ध्वनियों की पहचान करना (5–6 माह की आयु)

⇩

2. ध्वनि उत्पन्न करना (आठ-नौ माह की आयु)

⇩

3. शब्दों तथा वाक्यों की रचना करना (2–3 वर्ष की आयु)

⇩

4. लिखित भाषा का प्रयोग करना (4–5 वर्ष की आयु)

⇩

5. अनुप्रयोग में निपुणता लाना (5 वर्ष की आयु के बाद)

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. स्वास्थ्य	2. बुद्धि
3. यौन भिन्नता	4. सामाजिक-आर्थिक स्तर
5. परिवार का आकार	6. जन्मक्रम
7. बहुजन्म	8. बहु भाषावादी
9. संगी साथी	10. अभिभावक प्रेरणा

भाषा विकास का सिद्धान्त

स्कीनर ने भाषा सीखने की प्रक्रिया के स्पष्टीकरण हेतु अनुकरण तथा संशोधन प्रतिमान को प्रस्तुत किया। इस प्रक्रिया के अनुसार बालक वयस्कों के ध्वनियों व शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं तथा उनका अनुकरण करते हैं। जब वे वयस्कों के शब्दों व वाक्यों का सही ढंग से अनुकरण करने में समर्थ हो जाते हैं, तो वयस्क उनके इस व्यवहार की प्रशंसा करके उसे पुनर्वलित करते हैं। इससे बालक भाषा को जल्दी सीख जाता है।

***नोआम चाम्सकी–**

- नोआम चाम्स्की अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक है।
- इन्होंने वर्ष 1957 में 'सिंथेटिक स्ट्रक्चर' नामक ग्रंथ लिखा।
- चाम्सकी के अनुसार मनुष्य में भाषा अर्जन की जन्मजात एवं मस्तिष्क की अंतनिर्हित क्षमता होती है।
- इनके अनुसार बालक में LAD (Language Acquistion and Device) होती है, जिससे वे भाषा के नियमों को स्वतः ही अपने वातावरण से ग्रहण कर लेते हैं। इसी को इन्होंने आंतरिक व्याकरण कहा है।
- नोआम चाम्सकी ने सार्वभौमिक भाषा का सिद्धांत दिया।

भाषा विज्ञान

स्वनिम–स्वनिम किसी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में पायी जाने वाली लघुतम इकाई है। स्वनिमों का अपना अर्थ नहीं होता किन्तु वे अर्थभेदक होते हैं जैसे–'प' 'क' 'न' 'अ' आदि।

रूपिम–रूपिम भाषा की लघुतम् अर्थवान इकाई है। रूपिम की संकल्पना में शब्द, धातु, प्रतिपदिक, प्रत्यय आदि सभी आ जाते हैं। रूपिम की एक मुख्य विशेषता यह होती है कि इसे और अधिक सार्थक खण्डों में विभक्त नहीं किया जा सकता है।

विभिन्न अवस्थाओं में सृजनात्मक विकास

सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ-

- **ड्रेवहल के अनुसार–**''सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन रचना या विचारों को प्रस्तुत करता है।''
- **क्रो एवं क्रो के अनुसार–**''सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की एक मानसिक प्रक्रिया है।''
- **क्रो और ब्रूस के अनुसार–**''सृजनात्मकता मौलिक उत्पाद के रूप में मानव मस्तिष्क को समझने, व्यक्त करने तथा सराहना करने की योग्यता व क्रिया है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सृजनात्मकता में संवेदनशीलता, जिज्ञासा, कल्पना, मौलिकता, खोजपरकता, लचीलापन, प्रवाह, विस्तृतता नवीनता आदि गुणों का समावेशन होता है।

सृजनात्मकता के तत्व-

सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व होते हैं–

(i) **प्रवाह–**सृजनात्मकता में प्रवाह होता है। प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गयी समस्या पर अधिकाधिक विचारों, प्रत्युत्तरों या अनुक्रियाओं को प्रस्तुत करने से होता है।

(ii) **विविधता–**विविधता से तात्पर्य किसी समस्या पर दिये गये उत्तरों, विकल्पों में विविधता से है। अतः सृजनात्मकता में विविधता के गुण होने चाहिए।

(iii) **मौलिकता–**सृजनात्मकता में मौलिकता के गुण होते हैं। अर्थात् सृजनात्मकता तब होगी जब नवीन विचारों या वस्तुओं की उत्पत्ति होगी।

(iv) **विस्तारण–**सृजनात्मकता में विस्तारण का गुण होना चाहिए।

सृजनात्मकता की प्रक्रिया-

ई. पी. टोरेन्स तथा **आर. ई. मायर्स** ने सृजनात्मक प्रक्रिया के निम्न चार सोपान बताये हैं–

(i) समस्याओं की पहचान
(ii) उपलब्ध सूचनाओं का संकलन
(iii) समाधानों को खोजना
(iv) परिणामों का संचरण

शैशवावस्था में सृजनात्मक विकास-

- शैशवावस्था में शिशु बहुत कल्पनाशील होता है। वह अपनी कल्पना के आधार पर ही नयी वस्तुओं का सृजन करता है जैसे–कागज की नाव बनाना, उड़ने वाला जहाज बनाना, कागज पर तरह-तरह के चित्र बनाना उसमें रंग भरना आदि।
- शैशवावस्था में सृजनात्मक क्षमता का विकास भलीभाँति होना आवश्यक है, क्योंकि इसमें हम बालक की कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हैं।
- इस क्षमता का विकास करके हम उनके भावी जीवन का निर्माण करते हैं व शिशु के व्यक्तित्व का उचित विकास करते हैं।

बाल्यावस्था में सृजनात्मक विकास-

- प्रत्येक बच्चे में सृजन की क्षमता जन्मजात होती है, छोटे बच्चों के खेलों में यह सृजनात्मक शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। रचनात्मक कार्यों द्वारा वह सीखते और आगे बढ़ते हैं। इसके लिए हम बच्चों को कुछ स्वयं करने का अवसर दें, आस-पास की वस्तुओं का ज्ञान वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करें और अनुभव करें। बच्चों की कल्पना निरीक्षण व स्मरण शक्ति के विकास द्वारा ही उनकी सृजनात्मक क्षमता विकसित होगी।
- बच्चों की सृजनात्मक शक्ति का विकास हम कई प्रकार की क्रियाओं द्वारा कर सकते हैं जैसे–खेल, कला, नृत्य, अभिनय और बेकार की वस्तुओं से सामग्री तैयार करना आदि।

किशोरावस्था में सृजनात्मक शक्ति का विकास-

- इस अवस्था के बच्चों में कल्पना की अधिकता होती है, वह सृजनात्मक कार्य करके अपनी कल्पना को यथार्थ का रूप देना चाहता है।
- किशोर-किशोरी में सृजनात्मक शक्ति के विकास के लिए विद्यालय में तरह-तरह की पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए। जैसे–वाद-विवाद प्रतियोगिता, साहित्यिक गोष्ठियाँ, नाटक एवं संगीत, नाटकीय खेल, व्यर्थ सामग्री का उपयोग करके कुछ नई वस्तु की रचना आदि।
- सृजनात्मक क्षमता का विकास करके ही उन्हें हम कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, साहित्यकार, शिक्षक या समाज का मार्गदर्शक बनने में सहायता कर सकते हैं।

सृजनात्मक बालकों की विशेषताएँ

1. अन्वेषणात्मक तथा जिज्ञासात्मक प्रकृति
2. विचारों तथा अभिव्यक्ति में मौलिकता
3. गैर परम्परागत विचारों में रुचि
4. जोखिम उठाने को तत्पर
5. अभिव्यक्ति में विविधता
6. स्वतंत्र निर्णय क्षमता
7. अभिव्यक्ति में स्वः स्फूर्तता
8. सृजन का गौरव
9. विस्तारण क्षमता
10. अभिव्यक्ति में प्रवाह
11. उच्च आकांक्षा स्तर
12. दूरदृष्टि

सृजनात्मक परीक्षण

मानकीकृत विदेशी परीक्षण-

(i) मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
(ii) गिलफोर्ड का बहु-विधि चिंतन परीक्षण
(iii) रिमोट एसोशिएशन परीक्षा
(iv) बलाक एवं कारगन का सृजनात्मक उपकरण
(v) सृजनात्मक योग्यता का ए.सी. परीक्षण
(vi) टॉरेन्स का सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

भारत में मानकीकृत परीक्षण-

(i) बाकर मेहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण–हिन्दी एवं अंग्रेजी
(ii) पासी सृजनात्मक परीक्षण
(iii) शर्मा बहु-विधि उत्पादन योग्यता परीक्षण
(iv) सेक्सेना सृजनात्मक परीक्षण

महत्वपूर्ण वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से किसकी भूमिका पूर्व बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?
(a) अध्यापकों की (b) संगी-साथियों की
(c) पड़ोसियों की (d) माता-पिता की

2. पद 'संवेगात्मक क्रान्ति' किस अवस्था से अधिक जुड़ा हुआ है?
(a) शैशवावस्था से (b) बाल्यावस्था से
(c) किशोरावस्था से (d) प्रौढ़ावस्था से

3. निम्नलिखित में से कौन-सा कारक बच्चे के संवेगात्मक विकास को सबसे कम प्रभावित करने वाला है?
(a) परिवार (b) आर्थिक स्थिति
(c) स्वास्थ्य (d) खेलकूद

4. अधिगमकर्ता में बढ़ते हुए क्रोध को रोकने के लिए अध्यापक को चाहिए–
(a) कि उसके सभी हितों की सुरक्षा करें भले ही वे अनुचित हों।
(b) कि बालक के दिन-प्रतिदिन के मामलों में कोई हस्तक्षेप न करे।
(c) कि वह उसे अनदेखा कर दें
(d) कि बालक को क्रोध करने पर दण्ड दें

5. शिशु के प्रति सहानुभूति एवं प्यार-दुलार से किस संवेग की उत्पत्ति होती है?
(a) क्रोध (b) भय
(c) अनुराग (d) आक्रामकता।

6. निम्न में से कौन-सा व्यवहार भावनात्मक बाधा को प्रदर्शित नहीं करता है?
(a) बाल अपराध (b) कमजोरों को डराने वाला
(c) भगोड़ापन (d) स्वालीनता।

7. स्पीनोजा ने संवेग को कितने प्रकार से बाँटा है?
(a) 2 (b) 3
(c) 4 (d) 5

8. इनमें से कौन सी प्रकृति भावनात्मक विकास से संबद्ध नहीं है?
(a) भावनाओं की उत्पत्ति शारीरिक परिवर्तन के साथ शुरू होती है
(b) भावनाओं का प्रस्फुटन जन्म के साथ होने लगता है
(c) शुरुआत वाह्यकाल के दौरान भावनाओं का प्रचण्ड रूप नजर आता है
(d) भावनाएं शरीरिक विकास से असम्बद्ध होती है

9. मैक्ड्यूगल के अनुसार मूल प्रवृत्ति 'जिज्ञासा' का सम्बन्ध संवेग कौन-सा है?
(a) भय (b) घृणा
(c) आश्चर्य (d) भूख

10. ''संवेगात्मक रूप से अभिप्रेरित बच्चों'' की मुख्य विशेषता है-
(a) उनका अतिप्रक्रियात्मक स्वभाव

(b) उनका अंतर्मुखी स्वभाव
(c) अपने विचार प्रकट करने का संतुलित तरीका
(d) उनका विषादग्रस्त व्यवहार

11. परीक्षा में तनाव–निष्पत्ति को प्रभावित करता है। यह तथ्य निम्नलिखित में से किस प्रकार के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है?
(a) संज्ञान–भावना (b) तनाव–विलोपन
(c) निष्पत्ति–चिन्ता (d) संज्ञान–प्रतियोगिता

12. जब बच्चे की दादी, उसे उसकी माँ की गोद से लेती है, तो बच्चा रोने लगता है। बच्चा .... के कारण रोता है।
(a) वियोग दुश्चिंता (b) सामाजिक दुश्चिंता
(c) संवेगात्मक दुश्चिंता (d) अजनबी दुश्चिंता

13. खेल के माध्यम से बालक अपने संवेगों पर नियंत्रण करना सीख जाता है तो यह विकास निम्न में से कौन–सा है?
(a) सामाजिक विकास (b) शारीरिक विकास
(c) संवेगात्मक विकास (d) इनमें से कोई नहीं

14. निम्नलिखित में से कौन–सी परिस्थिति में बच्चे का संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास अच्छे से होगा?
(a) जब बच्चे को महत्त्वपूर्ण माना जाए, उसकी भावनाओं का सम्मान किया जाए।
(b) बच्चे को अधिक–से–अधिक पढ़ने को कहा जाए।
(c) बच्चे के कक्षा में अच्छे अंक आए।
(d) जब शिक्षक बच्चों को उनके बौद्धिक स्तर के अनुसार पढ़ाए।

15. मूल प्रवृत्तियों को चौदह प्रकार से किसने वर्गीकृत किया है?
(a) ड्रेवर (b) मैक्डूगल
(c) थॉर्नडाइक (d) वुडवर्थ

16. व्यापक वफादारी, दया भावना में वृद्धि व मानसिक स्थिति में उतार–चढ़ाव संबंधित है–
(a) शारीरिक विकास की विशेषताएं
(b) संवेगात्मक विकास की विशेषताएं
(c) सामाजिक विकास की विशेषताएं
(d) सांस्कृतिक विकास की विशेषताएं

17. भय संवेग उत्पन्न करने के लिए स्वाभाविक उद्दीपक है–
(a) दर्द
(b) अचानक उत्पन्न होने वाला उद्दीपक
(c) अंहकार युक्त स्थान
(d) तेजी से गिरती हुई वस्तु

18. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार निम्नलिखित में से किस विधि द्वारा मूल-प्रवृत्तियों में परिवर्तन लाया जा सकता है?
(a) सहसम्बन्ध (b) मार्गान्तरीकरण
(c) विलयन (d) नवीनीकरण

19. क्रोध व भय प्रकार हैं -
(a) अभिप्रेरणा (b) संवेग
(c) परिकल्पना (d) मूलप्रवृत्ति

20. मैक्डूगल के अनुसार प्रत्येक मूल प्रवृत्ति से सम्बद्ध होता है
(a) संज्ञान (b) संवेग
(c) संवेदना (d) चिन्तन

21. 'संवेग व्यक्ति की उत्तेजित दशा है' यह कथन निम्नांकित में से किसका है?
(a) पियाजे (b) वुडवर्थ
(c) वैलेन्टाइन (d) रॉस

22. संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक है
(a) शारीरिक स्वास्थ्य (b) मानसिक योग्यता
(c) थकान (d) ये सभी

23. सृजनशीलता के पोषण के लिए एक अध्यापक को निम्न में से किस विधि की सहायता लेनी चाहिए?
(a) ब्रेन स्टार्मिंग/विचारावेश (b) व्याख्यान विधि
(c) दृश्य-श्रव्य सामग्री (d) इनमें से सभी

24. बच्चे तब सर्वाधिक सृजनशील होते हैं, जब वे किसी गतिविधि में भाग लेते हैं।
(a) शिक्षक की डाँट से बचने के लिये
(b) दूसरों के सामने अच्छा करने के दबाव में आकर
(c) अपनी रुचि से
(d) पुरस्कार के लिए

25. शिक्षक बच्चों को सृजनात्मक विचारों के लिए प्रोत्साहित कर सकता है
(a) उन्हें बहु-विकल्पी प्रश्न देकर
(b) समस्या समाधान आधारित प्रश्न पूछकर
(c) उन्हें उत्तर कंठस्थ करने के लिए कहकर
(d) उनसे प्रत्यास्मरण-आधारित प्रश्न पूछकर

26. 2 से 3 वर्ष की आयु के मध्य एक बच्चे की भाषायी विकास दर (% में) बढ़ता है लगभग.......
(a) 50 से 1000 तक (b) 2 से 10 तक
(c) 20 से 50 तक (d) 50 से 5 तक

27. दूसरे वर्ष में अन्त तक शिशु का शब्द भण्डार हो जाता है–
(a) 100 शब्द (b) 60 शब्द
(c) 50 शब्द (d) 10 शब्द

28. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 दस्तावेज में भाषा के लिए निहित है
(a) एक भाषा (b) द्वि भाषा
(c) तीन भाषा (d) बहु भाषा

29. अनुकरण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम शिशु अनुकरण करता है
(a) व्यंजन वर्णों का (b) स्वर वर्णों का
(c) स्वर व व्यंजन वर्णों का (d) शब्दों का।